सूर्य उपासना

सूर्य उपासना

● प्राचीन भारतीय मनीषियों ने बताया है कि प्रतिदिन यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से सूर्यदेव की उपासना करे तो वह ओज, तेज, स्वास्थ्य और श्री समृद्धि से परिपूर्ण हो जाता है।

● किसी भी रविवार के दिन से सूर्योपासना की जा सकती है। इसके लिए सूर्य-देवता का चित्र सामने लाल आसन पर स्थापित करके श्रद्धापूर्वक उसकी धूप दीप से पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् ध्यान स्तुति का पाठ करके माला के सहारे सूर्य मंत्र का जप करना चाहिए।

ध्यान स्तुति

जपा कुसुम संकाश काश्यपेय महत्द्युतिम्।
तमोऽरि सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम्॥

जप मन्त्र

ॐ घ्रणिः सूर्य आदित्यः। अथवा ॐ ऐं ह्रीं सूर्याय नमः।

इस मंत्र का नियमित जप करने वाला साधक को रवि पुष्य योग में इस मंत्र को अष्टगंध से भोजपत्र पर लिखकर उसे धूप दीप देकर दाहिनी भुजा पर धारण करे तो स्मरण शक्ति, व्यक्तित्व, प्रभाव समृद्धि वृद्धि तथा पारिवारिक सुख प्राप्त होता है।

पं० ऋषि कुमार शास्त्री

सूर्य उपासना

प्रस्तुत पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास कृत सूर्य माहात्म्य (सूर्य पुराण) सूर्य देव की वंश परम्परा, सूर्य के विभिन्न नाम, ब्रह्मांड और सौर-परिवार, ज्योतिष शास्त्र में सूर्य की महत्ता, चाक्षुषी-विद्या और सूर्योपासना, त्रिकाल सूर्य स्तवन, पौराणिक सूर्य-विवेचन, सूर्य सम्बन्धी प्रमुख कथायें, सूर्य का स्वास्थ्य पर प्रभाव, सूर्य नमस्कार योग के साथ-साथ आदित्यहृदय स्तोत्र व अन्य सूर्य सम्बन्धी विवरण दिया गया है। वास्तव में सूर्य के सभी उपासकों के लिए यह पुस्तक सर्वोत्तम है।

देहाती पुस्तक भण्डार (Regd.)

चावड़ी बाजार, चौक बड़शाहबुला, दिल्ली-110006

फोन : 3261030, 3279417

ब्रांच व शोरूम—जी-1, शक्तिदीप, 2, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 2 फोन-3266864

प्रकाशक

देहाती पुस्तक भण्डार (Regd.)

चावड़ी बाजर, चौक बड़शाहबुला

दिल्ली–110006

फोन: 3261030, 3279417

सम्पादक :

पं० ऋषि कुमार शास्त्री

मूल्य

स्वदेश में: 18/- (अठारह रुपये

विदेश में §2 (दो पौंड) या

$3 (तीन डालर)

मुद्रक

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

सूर्य की उपासना अनादि काल से होती आ रही है। वैदिक काल से ही सूर्य देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सूर्य के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि वे प्राणियों के जीवनदाता हैं। सभी धर्म इनको किसी-न-किसी रूप में मान्यता देते हैं। सूर्यवंश की परम्परा आदि का विस्तृत उल्लेख आगे किया जायेगा। यहां पर सूर्य का संक्षिप्त चरित्र दिया जा रहा है।

पौराणिक गाथाओं के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र महर्षि कश्यप की दो पत्नियां थीं—प्रथम दिति और दूसरी अदिति। दिति के गर्भ से दैत्यों का तथा अदिति के गर्भ से देवताओं का जन्म हुआ। भगवान् विष्णु के अंशावतार के रूप में सूर्य का जन्म भी माता अदिति के गर्भ से हुआ था, इसी कारण उनका एक नाम 'आदित्य' है। महर्षि कश्यप की सन्तान होने के कारण उन्हें 'काश्यप' भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त भगवान् सूर्य नारायण के भुवन-भास्कर, मार्तण्ड, रवि, अर्यमा, तपन, उष्णरश्मि, दिवाकर, प्रभाकर, जगत्चक्षु, प्रद्योतन, सविता, हंस, दिनेश आदि अनेक नाम हैं।

ये एक चक्र (पहिये) वाले रथ पर जिसमें सात घोड़े जुते रहते हैं, सवार होकर अखिल ब्रह्माण्ड का भ्रमण करते रहते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 50वें सूक्त के आठवें मन्त्र में लिखा है—"सूर्य हरित नामक सात अश्व तुम्हें ले जाते हैं। किरणें व ज्योति ही तुम्हारे केश हैं।" ऋग्वेद में ही आगे कहा गया है—"सूर्य के एक चक्र रथ में सात अश्व जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामों से रथ वहन करता है। वह सभी प्राणियों का, उनके शोभन तथा अशोभन कार्यों का दृष्टा है तथा मनुष्यों के कर्मों का प्रेरक देव है।" सूर्य आकाश में चमकता हुआ अन्धकार को दूर करता है। अपने गौरव तथा महत्व के कारण इसे देवों का पुरोहित कहा गया है। सूर्य को मित्र तथा वरुण का नेत्र बताया जाता है।

इनका 'अरुण' नामक सारथी बिना पांवों वाला है। विधाता ने सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व इन्हीं को सौंप रखा है। ये अपनी बारह कलाओं द्वारा, जिन्हें द्वादश आदित्य भी कहा जाता है, तीनों लोक तथा

चौदह भुवनों का अन्धकार दूर करते रहते हैं। इनके बिना सृष्टि का कार्य-संचालन हो ही नहीं सकता। चन्द्रमा आदि ग्रह तथा अन्य ज्योति-पिण्ड इन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। जल, थल, नभ के समस्त प्राणी, सम्पूर्ण वनस्पतियां तथा अन्य सभी पदार्थ इन्हीं के द्वारा जीवनी-शक्ति ग्रहण करते हैं। यदि ये न हों तो कहीं कुछ भी न रहे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार पृथ्वी तथा सूर्य के मध्य जो स्थान ब्रह्माण्ड का केन्द्र है, सूर्य की वहीं स्थिति है। सूर्य तथा ब्रह्माण्ड मण्डल के मध्य सब ओर 25 करोड़ योजन का अन्तर है अर्थात् सूर्य के सब ओर 25 करोड़ योजन की दूरी तक ब्रह्माण्ड-गोलक की सीमा है। अचेतन अण्ड में सूर्य 'वैराज' रूप में प्रतिष्ठित है। इसीलिये सूर्य को 'मार्तण्ड' नाम से भी अभिहित किया जाता है।

सूर्य की दो पत्नियां हैं—(1) सन्ध्या और (2) छाया। सूर्य की 'संध्या' नामक पत्नी के गर्भ से यमराज तथा यमुना का जन्म माना जाता है तथा 'छाया' नामक पत्नी के गर्भ से शनैश्चर का। शनैश्चर को इसी कारण 'सूर्य-पुत्र' अथवा छाया-सूनु' कहा जाता है।

सूर्य सदैव उदित रहने वाला ग्रह है। यह कभी अस्त नहीं होता। क्षितिज के कारण अथवा पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमते रहने के कारण ही यह कहीं उदित और कहीं अस्त हुआ दृष्टिगोचर होता है। यथार्थ में यह दृष्टि-भ्रम मात्र है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार आकाश मण्डल में अनेक सूर्यों की स्थिति है, जिनमे एक सूर्य वह है जो हमें दिखाई देता है तथा दृष्यमान ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि जिसकी परिक्रमा करते रहते हैं। इसका अधिकांश भाग हाइड्रोजन गैस से निर्मित है जिसके कारण इसमें आग की मीलों लम्बी लपटें उठती रहती हैं। स्मरणीय है कि भारतीय-वाङ्मय में द्वादश सूर्यों की मान्यता बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है।

पौराणिक मतानुसार पञ्च महा देवताओं में से सूर्य भी एक हैं। इनकी आराधना-उपासना करने से स्वास्थ्य, रोग निवारण, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष आदि की प्राप्ति होकर सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।

—लेखक

सूर्य उपासना

१ सूर्य पुराण (सूर्य माहात्म्य)

—❀—

दोहा—बन्दि कञ्जपद जोरि कर, श्रीपति गौरिगणेश।
तुलसिदास कहते सुयश बरणौं कथा दिनेश॥
बन्दौं चरणन हृदय धरि, प्रेत भक्ति मन लाइ।
महिमा अगम अपार है, साहब ज्ञान सहाइ॥

सूर्य देवता सुमिरौं तोहीं। सुमिरत ज्ञानबुद्धि देहु मोहीं
ज्योतिस्वरूप भानु बलवाना। तेज प्रताप है अग्नि समाना
तुम आदित परमेश्वर स्वामी। अलख निरञ्जन अन्तरयामी
बरणि न जाय ज्योतिकर लीला। धर्म धरन्धर परम सुशीला
ज्योतिकला चहुँओर विराजै। जगमग कानन कुण्डल छाजै
नील बरण बर है असवारी। ज्ञान निधान धर्म व्रतधारी
तासु कथा मैं कहा बखानी। पुरुषोत्तम आनन्द घर ज्ञानी
आदित महिमा अगम अपारा। तीन भुवन जेहि रविउजियारा

दोहा—आदितकथापुनीतअति, गावहि शम्भुसुजान।
तीनलोक छविज्योतिमय, करौं प्रताप बखान॥

सुनहु उमा आदित परतापा। बरखौं विमल सूर्यकर जापा
नाम महातम सुनहु भवानी। कहौं पुनीत कथा शुभ बानी

बाँझ सुनै एक मास पुराना । मन क्रम बचन धरे व्रत ध्याना
द्वादश वर्ष रहै इतवारा । नेम धर्म एक मधुर अहारा
कुशा बिछाइ जरै विश्रामा । हर्षित जपे सूर्य कर नामा
आदित वासर जबहीं आवै । सुन पुराण अरु विप्र जिमावै
इतनी टेर धरे तिय जबहीं । होहिं दयाल दयानिधि तबहीं
होहिं पाँच सुत अग्नि समाना । धर्म धुरंधर ज्ञान निधाना
तिनसों जीति सके नहिं कोई । विद्यावान सुलक्षण होई

दो०-बांझ कथा मनलाइके, टेक धरै व्रत ध्यान ।
निश्चय इपज पांच सुत, योधा अग्नि समान ॥

इति श्रीमहापुराणे गोस्वामी तुलसीदासकृत सूर्यमाहात्म्ये
वन्ध्या स्त्री वर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कथा कहौं रवि अमृतबानी । मन अस्थिर कर सुनहु भवानी
कुष्ठ बरन हो जाके अङ्गा । सुने मनुज सो भानु प्रसङ्गा
रवि दिन भोजन करे अलोना । पुष्प सुवास चढ़ावें दोना
विप्र बोलि रवि होम करावै । सो भस्म ले अङ्ग लगावै
निश्चय कुष्ट बरन छय जाई । धनि महिमा है सूर्य गोसाईं

दो०-जाके कुष्ठ शरीर में, सो नित सुनै पुरान ।
निश्चय सूर्य प्रताप से, पावे कायादान ॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये कुष्ठनिवारणे
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूर्य कथा मैं कहौं बखानी । मन स्वतन्त्र होइ सुनहु भवानी
जाके वरण अङ्ग महँ होई । सूरज कथा पाठ कर सोई

करै पांच व्रत हर इतवारां। नेम धर्म एक मधुर अहारा
चन्दन अगर लेप तन करई। निसदिन ध्यान सूर्य पर धरई
भानु चरित्र सनै मनलाई। निश्चय कुष्ठबरन त्तय जाई
दो०-जाके उपजे कुष्ठ जो, सो नित सुने पुरान।
धनि महिमा आदित्य की करौं प्रताप बखान॥
सूर्य कथा मैं कहों बुझाई। मन क्रम बचन सुनो चितलाई
जो नर होइ अंधयुगलोचन। सो यह कथा सुनै दुखमोचन
करै लोन विन एक अहारा। विविध भाँति कर नेम अचारा
पीपर तरु तर सुनै पुराना। पावै लोचन अंध सुजाना
अन्धा लोचन निश्चय पावै। जो यह कथा सुचित मन लावै
द०-अन्ध लहै निश्चय नयन,जो जानै प्रभु एक।
पुलकिम परम पुनीत यह, धरे कथा पर टेक॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये अन्धलोचनप्राप्तो
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यात्रा जो नर करै विदेशा। सो नित सुनै पुरान सुरेशा
निश्चय तासु सकल शुभ होई। लाभ भवन चलि आवै सोई
जो चिंतन हो ऋण अधिकारी। सो यह कथा करै अनुसारी
निश्चय ऋणहु सकल मिटि जाई। धनि महिमा है सूर्य गुसाईं
दो०-यात्राको नर जब चले, तब यह सुने पुरान।
निश्चय नमवांछित सकल पुरवहिं श्रीभगवान॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये मनवांछित-
फलदो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऐसी महिमा आदित देवा। करहिं जासु सुरनर मुनि सेवा
मिटै गाढ़ निश्चय मन तासू। पुलक प्रेम मन हरष हुलासू
दीनानाथ निरञ्जन गाई। महिमा जाकर बरनि न जाई
सूर्य कथा मैं कहौं बखानी। मन अस्थिर कर सुनहु भवानी
करै दण्डवत अरु व्रत ध्याना। सो तनु ले यहि कथा समाना
तेज प्रताप बरनि नहिं जाई। सूर्यचरित्र सुनहु मन लाई
कहौं सुभग यह कथा पुनीता। रवि प्रताप मैं भयो अजीता

दो०-जो महिमा आदित्य की, बरनौं प्रेम उछाह।
सुनहु उमा अति पुलकि तन, कीरति प्रभु अवगाह ॥

कहौं पुनीत कथा शुभ बानी। बहुरि महातम सुनहु भवानी
कार्तिक चैत पुनीत दिनभारी। साजहु अरघ सकल नर नारी
चन्दन अगर कपूर की बाती। पूजा भक्ति करै बहुभाँती
तेहि कल्याण करैं भगवाना। तेज पुञ्ज प्रभु कृपानिधाना

दो०-लीला अगम अपार प्रभु कृपासिन्धुभगवान।
बरणौं कथा पुनीत यह, मन स्थिर करि ध्यान॥

सुनहु उमा यह चरित अपारा। भानु महातम बहु बिस्तारा
सिंहल द्वीप नगर एक नाऊ। तहाँ निवास परीक्षित राऊ
तहाँ पुनीत धर्म नर नारी। तासु भवन एक सुता कुमारी
करै सो निन्य भानु की पूजा। सेवै सूर्य और नहिं दूजा
श्रद्धा नेम कथा मन लाई। करै हर्ष सो शुभ दिनराई
तासु भवन प्रभु करैं कलेवा। तीन लोक नहिं जानै भेवा

एक समय अति अचरज भयऊ। सुरसरि तीर गमन तेहि ठयऊ
चीर उतारि भूमि पर धरेऊ। कन्या पग जल भीतर करेऊ
मज्जन करन लागि सो बाला। हिये विराजत मोती माला
तेहि अवसर नारद मुनि आये। कन्या देखि परम सुख पाये
ठाढ़ भये मुनि सुरसरि तीरा। लीन्ह उठाय सुता कर चीरा
कन्या जल में कही पुकारी। पट दीजै मुनि धर्म विचारी
कह नारद सुनु कन्या बाता। मोसन करहु पुरुष कर नाता
सुनु मुनि ज्ञान भये तुम बौरा। ऐसे बचन कहौ जनि औरा
अस बानी कस कहेउ मुनीसा। हम सम कन्या लाख पचीसा
बिनती और सुनहु मम बानी। देउ बसन हे मुनि विज्ञानी

दो०-नग्ननारि जल महँ खड़ी, कह मुनि सों करजोरि।
कृपासिन्धु ज्ञाता धरम, अम्बर दीजै मोरि॥

जब कन्या बहु बिनती गाई। तेहि क्षण नारद रहे लजाई
अंबर दे मुनि भवन सिधाये। तहँ तबहीं श्रीशङ्कर आये
सो सुनि मुनिहिं शापवशकीन्हा। सो आदित सों कहबे लीन्हा
जहँ मैं करत रही असनाना। अम्बर ले गये मुनि विज्ञाना
ताही क्षण शिव तहां सिधारे। गौर बदन सङ्ग गिरिजा धारे
शक्ति सहित प्रभु नाये माथा। हर्षि शंभु देखा मुनि नाथा
कुशल कहा मुनि शिव मुसकाई। बैठन कहि सब कथा बुझाई
पूछा प्रभु तब शिव कर जोरी। नाथ सुनहु यह बिनती मोरी
कह अपराध कीन्ह मुनि भारी। सो अब मोसन कहहु बिचारी
तब प्रभु कहा सुनहु हो भोरा। यह कन्या सेवक है मोरा

कारण सोइ श्राप सब दयऊ। तुरतै अङ्ग बरन मुनि लयऊ
इतना कहि मुनि मन मुसकाना। ज्ञानहीन तब मुनि पहचाना
बैन सुनत प्रभु क्रोधित भयऊ। कन्या सँग लै मुनि पहँ गयऊ
दो०—बचन सुनत क्रोधित भये, क्रोध न हियेसमाय।
कौतुक कीन्ह अयुक्त तुम, मोसन कहहु बुझाय॥
जोरि पाणि मुनि बचन सुनाए। धरि पद कमल सूर्य गुण गाए
कह मुनि सुन प्रभु बचन हमारी। भा मोसन अपराध है भारी
यह अपराध क्षमा प्रभु कीजै। दीनानाथ अनुग्रह कीजै
तब प्रभु कहा सुनो मम बानी। उतके लोग सकल अज्ञानी
तेहि अपराध लेहु मुनि शापा। जस कीन्हेउ तस भोगहु पापा
दो०—त्रिभुवन स्वामी मोहिं पर, करहूज्योतिप्रकाश।
हर्षित गावहिं गुन विमल, जहां भोर भवबास॥
इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्यवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥
पंपापुर एक नगर को नाऊ। हलधर विप्र तहाँ एक राऊ
नगर बसै मानो कैलाशा। धर्म कथा तहँ होइ प्रकाशा
पूजन करै भानु दिन राती। निस दिन टेक धरे बहु भाँती
कोटिअग्नि चारहु दिशि माहीं। श्री सूर्य को आश्रम ताहीं
रत्न जड़ित सर तहाँ सुहावा। कनक घाट चहुँ ओर बनावा
तहाँ खंभ एक परम विशाला। शतयोजन सो ऊँच रसाला
तेहि खंभ आदित कर वासा। जात खंभ सो लाग अकासा
जोजन लक्ष सों उदय कराहीं। जोजन सहस एक पल जाहीं
प्रात होत उदयाचल पासा। अस्ताचल पर करहिं निबासा

आदित कथा सुनहु मन लाई। मैं तोहि अर्थ कहौं समुझाई

दो०—धन्य भानु ईश्वर प्रभू, महिमा अगम अपार।
तीन लोक छबि ज्योतिमय, है जाकर उजियार।
कुष्ठी ध्यावे भक्ति कर, पावे काया दान।
अन्तरयामी दयानिधि, कृपा करहिं भगवान॥
सुरनरमुनि अस्तुति करहि, होउ प्रसन्न भगवान।
जा हित मन व्रत नर करै, श्रद्धा प्रीति समान॥
सब गुण आगर बुद्धिवर, सुन्दर सील निधान।
मन बच कर्म ते हर्षयुत, जो नर करहिं बखान।

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

गिरिजा कह्यो जो कहा गुसाईं। सो मोहिं अर्थ कहो समुझाई
कहन लगे शिव कथा रसाला। जेहि विधि ऊगहिं पूर्व कृपाला
गिरिजा सुनो कथा मनलाई। मैं तोहिं अर्थ कहौं समुझाई
पूर्व दिशा एक श्रीपुर देशा। तहँ के राजा भूप महेशा
सदा करे आदित की पूजा। सेवे सूर्य और नहिं दूजा
यहि विधि सकल नगर उँजियारा। तहाँ एक है अगम अपारा
सरस कोस परवत परमाना। बसै तहाँ आदित बलवाना
उगें जाय तहँ करैं निवासा। पुनिपश्चिमदिशि करहिंप्रकाशा
मन बच कर्म कथा बर गाई। सूर्य चरित विधि तुमहिं सुनाई
सुनि गिरिजा सुन्दर बर बानी। बल प्रताप सुनि मन हरषानी

धन्य भानु जिनकी यह लीला । धर्म धुरन्धर परम सुशीला
जो नर कथा सूर्य की गावै । चढ़ि विमान वैकुण्ठ सिधावै
सूर्य चरित सुनि अमृत बानी । अस्तुति हर्षित करैं भवानी

छंदहेजगस्वामीअन्तरयामीज्योतिकलछाविउदितमहा
गुन गीत निधाना श्रीभगवाना करो कृपा हेधर्ममहा ॥
छविज्योतिविराजैकुंडलराजै तव प्रतापमहिमाबरना।
तव हत घनेरा सब प्रभु तेरा लेत नाम पातक हरना ॥
दो०-करहुकृपाअबमोहिंपर,अतिछविज्योतिविराज।
तेज विपुल तिहुँलोकमहँ,जय जयजय महराज॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये पूर्वदिशि उदयवर्णनो
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

उत्तर दिशि महँ कहौं गोसाई । मैं तेहिं अर्थ कहौं समुझाई
तहाँ शैल एक परम विशाला । राज करै तहँ मदन गोपाला
तापर भानुकिरन नहिं जावै । यहि विधि पुर अँधियारजनावै
निशा जोर सब पुर अँधियारी । उगै न रवि न होइ उँजियारी
तहाँ वास कलियुग कर होई । पाप म्लेच्छ बसत तहँ सोई
यहि कारण तहँ उगे न भानू। मैं तोहिं अर्थ कहौं परमानू
एक समय अचरज अति भयऊ । नारदमुनि तहाँ चलि गयऊ
देखा नगर सकल अँधियारा । धर्म कथा कर कहुँ न प्रचारा
फिरफिरसकल नगरमुनि देखा । अन्य व्योहार अपर नहिं देखा

मनमहँ नारद कीन्ह विचारा । कहँ आये यहि पुर अँधियारा
असकहि नारद कोपेउ जबहीं । दीन्हा श्राप नगर कहँ तबहीं
कुष्ठी होउ सकल नर नारी । धर्म कथा कर नाम बिसारी
कुष्ठ बरन भा सबके अङ्गा । आठो गात कुष्ठ तन भङ्गा
रहो न कोउ कुष्ठ विहीना । जबहीं श्राप मुनीश्वर दीना
व्याकुल भये सकल नर नारी । त्राहि त्राहि सब करहिं पुकारी
श्राप देइ ऊसर कहँ आये । अब हम यह मुनि चरित्र सुनाये
अब कहहु मुनि देखा कैसा । हंस समान श्वेत भा जैसा
बिदा होइ मुनि घर कहँ आये । हरषित होइ भानु गुण गाये
धनि आदित काया के राजा । ज्योति जासु तिहुँलोक विराजा
अस्तुति रविकर नारद गाये । कोटि विप्र तब नेवत पठाये
भोजन सुधा समान बनाये । प्रेम सहित सब विप्र जेंवाये
अश्वमेध मुनि करन सो लागे । तीन लोक के दारिद भागे
सब कहँ नारद नेवत पठाये । निजनिज वाहन चढ़िचढ़ि आये
बहु प्रकार मुनि सबहिं जेंवाये । हर्षित होत भानु गुन गाये
वेद पढ़े मुनि गिरा सुधारी । हर्षित गावहिं मंगल नारी
चंन्दन अक्षत लै पकवाना । पूजा करहिं मुनि धरि ध्याना
ब्रह्मादिक निज लोक सिधाये । प्रेम पुलक सूरज गुन गाये

दो०—यज्ञ कीन्ह मुनिवरसुबुधि, शोभाबरनि न जाय
देव कोटि तैंतीस तहँ, हरषि भानु गुन गाय ।

इति श्रीमहापुराणे नारदयशवर्णनो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

जो नर धरै सूर्य पर ध्याना। ताके होइ पुत्र कल्याना
जो रवि कथा सुनै मन लाई। तापर दिनकर होइ सहाई
धर्म प्रताप आदित बलवाना। तेज प्रताप है अग्नि समाना
हे गिरिजा सुनु शैलकुमारी। कहिहौं भानु चरित विस्तारी
कहन लगे शिव कथा रसाला। जेहिविधि दच्छिण उगहिं कृपाला
वर्णन करहिं अर्थ समुझाई। सुनहु सत्य गिरिजा मन लाई
दच्छिण दिशि एक नगर अनूपा। जलमय विप्र तहाँ कर भूपा
हर्षित भजन करै दिन राती। तहाँ करै प्रभु सुख बहुँ भाँती
यहिविधि प्रभुकीज्योति विराजे। अनहद नाद घट धुनि बाजे
तेंतिस कोटि देवता जहँवाँ। श्री सूर्य के आश्रम तहँवाँ
दच्छिण दिशि काशी परियागा। तहँ के लोग सकल बड़भागा
दो बलभद्र सहोदर संगा। तहाँ बहैं सरितावर गङ्गा
कृपासिन्धु प्रभु परम अगाधा। निशिदिन सुमिरतनाथ अबाधा

दो०—दच्छिण दिशा पुनीत है, सुनहु उमा मनलाय।
सुभग अर्थ जैसे अहै, तैसे कहौं बुझाय॥

कलि व्यतीत जबहीं ह्वै जैहैं। मानुप को मानुष धरि खैहैं
तब प्रभु धरि अवतार कलंकी। मानुष तन हो जैहैं तंखी
तब दच्छिण दिशि उदय कराहीं। आगिल अर्थ कहौं तुम पाहीं
धर्म कथा गइहैं दिन राती। नेम धर्म करिहैं बहु भाँती
विप्र जेंवाय के होम करावै। वाहि भस्म लै अंग लगावै
यहि प्रति कमला करहिं निवासा। धर्म कथा कर होइ प्रकाशा

मिथ्या बचन कोय ना भाषै । धर्म विचार भानु तप राखै

दो०—द्वादश कला उगहिं तब, आदि अंत तब आय ।
पूर्वजन्मके सकल अघ, कहत सुनत क्षयजाय ॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये कलिवर्णनो नाम
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

बोली तबहिं उमा हरषाई । दया करहु कछु कहौं गुसाईं
जेहि सेवा करि नर सुख पावैं । जाहिं भजे शुभ गति नर पावैं
रवि महिमा अति अगम अपारा । कहिये नाथ कथा विस्तारा
जासो भक्ति मिलै सवधानी । कथा प्रसङ्ग सब कहहु बखानी
अति उत्तम जस रहि अवगाहा । सो प्रभु बरणौं सहित उछाहा
कस स्वरूप किमि रूपहिं करहीं । किमिसीतल किमितेजहिंधरहीं
कहि प्रतिमानस उदयगोसाईं । किमि व्रत किरन मोक्षहिंपाई
सोइ सत्य सब कहौं विचारी । जेहि सुनि होइ ज्ञान अधिकारी
अस कहि शिवपद बंदन कीन्हा । हरषि शम्भुहरि सुमिरनकीन्हा

दो०—धन्य-धन्य गिरिजा सुनहु, पूछेउजग हित लाग ।
रवि चरित्र पावन परम, सुनहु सहितअनुराग ॥

रवि मंडप कर सुन विस्तारा । जेहि विधि सब स्थूल अपारा
द्वादस सहस जोजन चहुँफेरा । रवि मंडल जानहुँ शुभ डेरा
अति उत्तम जग तेज अपारा । गये समीप न होय उबारा
दश सहस्र रवि नयन गनाये । अति विशाल कहि देवन गाये
उदय होत त्रिभुवन तम भागे । तासन यह नित नित वर माँगे

पारब्रह्म साखी सहिं जाने । सुमिरत हिये ध्यान उर आने
उदय होत विधि रूपहि जानो । मध्य विष्णु को रूप बखानो
सन्ध्या रूप रुद्र गति केरी । तीन काल तब मूरत टेरी
यह अनुमान सदा पद वंदिये । निश्चै करि विश्वास अनंदिये
पावहिं गति ते नर बड़भागी । जाके कमल चरण लव लागी

दो०—यहि विधि जानेउ है उमा, रवि पूजा जेहि हेतु ।
सिद्ध तासु मनकामना चारि पदारथ देतु ॥

और सुनहु प्रभु की प्रभुताई । सूर्य-कथा सब देवन गाई
द्वादस तन धरि वेद बखाने । द्वादश कथा उद्योत बिधाने
द्वादस मास के द्वादस नामा । उदय करै रवि जग सुख धामा
माघ मास नासन महँ नीका । कह श्रुति सब पासन महँटीका
नजर उदय कहि वरुन समाना । भक्तो ज्ञान ध्यान करजामा
चैत मीन रवि उदय कराहीं । नामदेव जग जाने ताहीं
माधहिं मेष भानु तप होई । उच्च नाम रवि करिहैं सोई

दो०—इन्द्रनाम व्रत जेष्ठ तप, सब प्रकार सुख देहिं ।
रविप्रसाद तपकर मिथुन, जासु नाम जप लेहिं ॥

सावन करक नाम रवि केरा । भादौं सहि भवन का फेरा
आश्विन कन्या राशि विराजै । सुरतर नित्यनाम सुभ छाजै
कातिक तुला दिवाकर नामा । उदय करहिं विजय सुखधामा
मार्गशीर्ष वृश्चिकहिं सुनाई । मित्रदास सब जग सुखदाई
पूषमास धनराशि गनाये । विष्णु सनातन नाम कहाये

यहि विधि द्वादस मास के माहीं । मास मास प्रति उदय कराहीं
औरो बेद कहै जस बानी । मास मास प्रति उदय भवानी
दो०—सुनो उमा सकल व्रत, दिन कर याहि विधान।
जाहि करै शुभ गति मिलै, गावै वेद पुरान ॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्यवर्णनो नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मन अस्थिर सुन शैलकुमारी । व्रत विधान कहौं विस्तारी
शनीवार लघु भोजन कीजै । आदितवार धरम बहु लीजै
दतकाष्ठ पहिले कै लीजै । तब अस्नानहिं चित्तहिं दीजै
उदय होत रवि अंजुल देई । सात प्रदच्छिण करिये सोई
तब धोती अरु लाल उपरना । होम करै पढ़ि मंत्र सपरना
बंदि दण्डवत रवि कहँ करई । दृढ़ विश्वास चित्तमहँ धरई
अगहन ते यह व्रतहि बखानो ।ताकर विधि अवश्य करि जानो
अगहन में तुलसीदल खंडित । व्रतहित करै सूक्ष्म ते पंडित
पूस मास गोघृत पल तीना । अति पुनीत कायाकर दीना
दो०—मास माघ व्रत जो करै,मुष्टि तीन तिल खाय।
व्रतविधान जो करहिंनर,रवि लोकनकोजाय॥
फागुन मास बरत सुखदाई । छीर तीन पल भोजन खाई
चैत्र मास कर सुनहु विधाना ।दही तीन पल अधिक न आना
बैशाख गोघृत गोबर आना । तीन पल ते अधिक न आना
जेठ मास कर याहि विधाना । तीन अंजुली करे जलपाना

मास असाढ़ वरत कष्ट धरई । तीन मरिच अवलंबन करई
सावन मास अमित सुखदाई । तामें पल तीनि सतुआ खाई
भादो मास अधिक सुखदाई । त्रै अंगुल गोमूत्रहिं खाई
आश्विन मास वरत शुभ जाने । फल केदली के तीन बखाने
कार्तिक मास बरत जो करई । त्रैपल हव्य आन के परई

दो०-यहिविधिबारहमासलगि,व्रतविधान के दीन ।
रवि पूजा विधिवत सहित,मुनि दुर्लभसोदीन॥
तुमसन सुनत विचारनित,कह्यो प्रगटहोयआई।
अब जो कुछ कहिहौं उमा,सुनो बरत हरषाई॥

इति श्रीमहापुराणे सूर्यव्रतवर्णनो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

सो सुन उमा हर्ष अति भई । माया मोह व्यथा सब गई
धन्य धन्य सुन शङ्कर स्वामी । कथा कहौं निज हरषित गामी
जन रक्षक रवि पूजत लोगा । करहिं अनंद मिटहिं सब रोगा
कथा और पुनि कहा गोसाईं । सो तुम और कछु करौ सहाई

इति श्रीमहापुराणे सूर्यमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे सूर्य-
कथावर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

2 सूर्यदेव की वंश-परम्परा

प्रारम्भिक-परिचय—

वैदिक और पौराणिक आख्यानों के अनुसार सूर्यदेव समस्त स्थान पर जीव-जगत् के आत्म-स्वरूप हैं। अखिल सृष्टि के ये ही आदि कारण हैं। इन्हीं से सबकी उत्पत्ति हुई है। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है :—

ॐ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
(ऋग्वेद १-११५-१)

समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का आदि-कारक विराट्-पुरुष माना गया है, इसी विराट्-पुरुष को वैश्वानर की संज्ञा दी गयी है। वैश्वानर अर्थात् विराट्-पुरुष सर्वव्यापी है। त्रैलोक्य का कण-कण इससे प्रभावित है। उस वैश्वानर अर्थात् विराट्-पुरुष के विषय में कहा गया है कि उसके सहस्रों सिर (मस्तक) हैं, सहस्रों नेत्र हैं, सहस्रों हाथ-पैर हैं। वह सभी दिशाओं से प्रत्येक स्थिति में समस्त पृथ्वी-मण्डल का स्पर्श करके उससे दश अंगुल आगे स्थित हो गया है। भाव यह है कि वह विराट्-पुरुष अर्थात् वैश्वानर समस्त ब्रह्माण्ड (पृथ्वीलोक) से भी बहुत बड़ा है। यजुर्वेद में इस उक्ति को स्पष्ट करने वाले मूल श्लोक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

सहस्रशीर्षा पुरुषां सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्वतिष्ठत दशांगुलम् ।।

सूर्य का वैश्वानर से घनिष्ट सम्बन्ध माना गया है। एक अवधारणा यह भी है कि वही विराट्-पुरुष अर्थात् वैश्वानर कालक्रम से, प्रसङ्गान्तर से सूर्य हुआ।

जो भी हो, यह सर्वमान्य तथ्य है कि सूर्य सबसे अधिक प्रतापी, प्रभावशाली, प्रत्यक्ष और सर्वस्पर्शी देवता हैं। प्रत्येक युग में उनकी महत्ता और प्रभावशीलता अक्षुण्ण रही है। आज भी वे यथावत् शक्ति-सम्पन्न, सर्वपोषक, जीवन-प्रदाता, तमोहारी और अजेय हैं।

वस्तुतः सूर्यदेवता त्रयीमूर्त्ति हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश का संयुक्त स्वरूप ! यथा—

उदये ब्रह्मणोरूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुः त्रिमूर्तिः यः दिवाकरः ॥

द्वापर में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक प्रसङ्ग में सूर्यदेवता की महिमा इस प्रकार बतायी थी कि वे (भगवान् सूर्य) समस्त ब्रह्माण्ड के नेत्र-स्वरूप हैं, दिवस की उत्पत्ति (प्रकाश का जन्म) उन्हीं से होती है। वे सदा वर्त्तमान रहने वाले (स्थायी-शाश्वत) देवता हैं। उन्हीं ने समस्त जगत् को उत्पन्न किया है और अन्त में सारी सृष्टि समाप्त होने पर उन्हीं के बिम्ब (प्रभामण्डल) में विलीन हो जाती है। विश्व-ब्रह्माण्ड में जितने भी ग्रह-नक्षत्र, योग, राशि, करण, वसु, आदित्य, वायु, अग्नि, नर, नाग, पशु, पक्षी, नदी, समुद्र, पर्वत और वन-मरु-स्थल आदि भौतिक-पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबकी उत्पत्ति, पालन और समाप्ति में प्रमुख कारण सूर्यदेवता हैं। सूर्य का उदय सबको चेतना देता है और इनके अस्त होने पर सब अस्त (विश्रान्त) हो जाते हैं। उनसे (सूर्य से) श्रेष्ठ और शक्ति-सम्पन्न तथा प्रभावशाली अन्य कोई देव-शक्ति नहीं है। 'अन्तरात्मा' नाम से विख्यात सूर्यदेव प्रत्येक प्राणी में बाह्य-आत्मा के रूप में तथा सुषुम्ना, स्वप्न और जाग्रति में स्थित (विद्यमान) रहते हैं।

भारतीय-अध्यात्म के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'भविष्य-पुराण' में श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य के सन्दर्भ में, 'साम्ब' नामक व्यक्ति से कहे हुए वाक्य इस प्रकार हैं :—

प्रत्यक्षं देवतासूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः ।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥
यस्मादिदं जगज्जातं, लयं यास्यति यत्र च ।
कृतादि लक्षणः कालः स्मृतः साक्षात् दिवाकरः ॥
ग्रह नक्षत्र योगाश्चः राशयः करणावि च ।
आदित्य वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरस्तथा ॥

भूत ग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुः दिवाकरः ।
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ।।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ।
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमान प्रदृश्यते ।।
अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ।
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ।
इतिहास पुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते ।।
बाह्यात्मेति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः ।

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूर्यदेव अनादि-अनन्त हैं। सृष्टि उनकी अवस्थिति से है, और सृष्टि के अन्त तक उनका अस्तित्व अक्षुण्ण रहेगा। जब वे ही सृष्टि के कारक और समापक हैं, तब उनके लय होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ब्रह्माण्ड में जो भी ऊर्जा है, सूर्यदेव उसका केन्द्रित रूप हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अविनाशी, शाश्वत और नित्य मानना ही श्रेयस्कर है। विराट् रूप अथवा काल-पुरुष के रूप में वे अजन्मा, अजेय, अज्ञेय, असीम और अपरम्पार हैं। परन्तु पौराणिक-सन्दर्भ में, देव-योनि के प्रसङ्ग में उनके जन्म की अनेक कथाएं आर्ष-ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। उन कथाओं में कहीं-कहीं प्रसङ्गान्तर और पर्याप्त मतभेद, घटना-भेद और चरित्र-व्यतिक्रम है। परन्तु इससे सूर्यदेवता की महिमा, तेजस्विता और अलौकिक-शक्ति के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी प्रत्येक कथा उनके इन अलौकिक-प्रभावों की पुष्टि करती है। कथा-भेद का वह कारण यहाँ भी माना जा सकता है, जो तुलसीदास जी ने 'रामचरित्र' के विषय में लिखा है—

हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता ।

अथवा

कल्पभेद हरिचरित सुहाये । भाँति अनेक मुनीसन गाये ।।

इसी प्रकार सूर्य भगवान् के सम्बन्ध में भी थोड़े हेर-फेर से अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। वे सभी प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रणीत हैं। किसी को अविश्वसनीय, त्याज्य अथवा मिथ्या नहीं कहा जा सकता। यह तो साधक (सूर्योपासक) की अपनी श्रद्धा-भक्ति पर निर्भर है कि वह किस प्रसङ्ग, किस कथा अथवा घटना-क्रम से अभिभूत होकर सूर्यदेव के प्रति श्रद्धापूर्वक समर्पित होता है।

सूर्य की जन्म-कथा

सूर्यदेव की उत्पत्ति के अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। यद्यपि उनमें वर्णित घटना-प्रसङ्गों में बहुत अन्तर है, किन्तु कई प्रसङ्ग अधिकांशतः परस्पर मिलते-जुलते हैं। जैसे भगवान् रामचन्द्र यद्यपि अनादि, अनन्त और सर्वलोकेश्वर हैं, तथापि 'राम' के रूप में वे राजा दशरथ के पुत्र होकर, रानी कौशल्या के गर्भ से अवतरित हुए। ठीक इसी प्रकार सूर्य-देवता भी सर्वाधिक प्रचलित मान्यता के अनुसार महर्षि कश्यप के पुत्र हैं और महर्षि-पत्नी—अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। अदिति के पुत्र होने के नाते ही उनका एक नाम 'आदित्य' भी हुआ। इसी प्रकार पैतृक नाम के आधार पर वे 'कश्यप' के पुत्र 'काश्यप' प्रसिद्ध हुए।

महर्षि कश्यप के पुत्र-रूप में सूर्य के अवतरित होने का कथानक इस प्रकार है :—

एक बार देवता और दैत्य दोनों वर्ग एक दूसरे के इतने प्रचण्ड विरोधी हो गये कि उनके मध्य भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। इतिहास में उसे 'देवासुर-संग्राम' की संज्ञा दी गयी। उस संग्राम में दैत्य और दानव—इन दो पक्षों की सामूहिक-शक्ति ने देवताओं को पराजित कर दिया। देव-वर्ग भय और ग्लानि के कारण इधर-उधर जा छिपा। उसके सभी प्रमुख नायक यद्यपि मन ही मन खिन्न थे, परन्तु दैत्य-दानव-शक्ति के विरुद्ध स्वयं को इतना असहाय पा रहे थे कि उनके सामने पड़ने का भी साहस न हो रहा था। इससे क्षुब्ध होकर देवताओं की माता अदिति देवी ने सोचा कि सर्वव्यापी काल-पुरुष और अजेय विराट्-रूप यह महान् शक्तिपुञ्ज सूर्य, यदि मेरे ऊपर कृपालु हो जायें तो अपने तेजांश से मुझे स्वयं जैसा तेजस्वी और अजेय पुत्र दे सकते हैं। उस पराक्रमी और अपराजेय पुत्र के द्वारा मैं अपने वर्त्तमान पुत्रों की पराजय का प्रतिकार सरलता से कर सकूँगी और समस्त दैत्य-दानव पराजित होकर भाग जायेंगे। ऐसी कल्पना करके देवी अदिति ने अपने पति महर्षि कश्यप से परामर्श किया। महर्षि ने उन्हें स्वीकृति दे दी। अदिति ने विराट्-शक्ति केन्द्र 'सूर्य' की उपासना की। फल स्वरूप अभीष्ट वर पाकर, वे सूर्य की माता बनीं। उनके गर्भ से परम तेजस्वी पुत्र के रूप में सूर्य ने अवतार लिया।

कथा-सार

भारतीय-अध्यात्म में पुराण-ग्रन्थों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पुराणों की संख्या 18 है। उनकी शाखा, पूरक अथवा छाया के रूप में अन्य 18 उपपुराण भी विख्यात हैं। उन सबमें विभिन्न देवी-देवताओं के

चरित्र, लीला-प्रसङ्ग तथा धार्मिक-सामाजिक नियम-कृत्य वर्णित हैं। कितने ही अलौकिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक विषयों और विभिन्न शास्त्रों, विद्याओं का वर्णन भी उनमें प्राप्त होता है। सूर्य-जन्म के सम्बन्ध में मार्कण्डेय पुराण, ब्रह्म-पुराण, श्रीमद्भागत, विष्णु-पुराण, अग्नि-पुराण, लिङ्ग-पुराण, मत्स्य-पुराण. पद्म-पुराण और भविष्य-पुराण आदि में बड़ी रोचक, विस्तृत और आस्थाजनक कथाएं वर्णित हैं। यही नहीं,पुराणों से भी प्राचीन 'वेद' जैसे आर्ष-ग्रन्थों में भी सूर्य का वर्णन, स्तवन, विवेचन किया गया है। पुराणों में वर्णित लगभग सभो सूर्य-जन्म-प्रसङ्ग, परस्पर मिलते-जुलते हैं। यों, नाममात्र का घटनान्तर भी है, परन्तु उससे सूर्य की महत्ता कम नहीं होती, सभी प्रसङ्ग 'सूर्य' को विश्व-ब्रह्माण्ड का सर्वाधिक शक्तिशाली देवता और अक्षय तेजपुञ्ज सिद्ध करते हैं।

उपरोक्त सभी पुराण-प्रसङ्गों के सारांश से सूर्य की जन्म-कथा इस प्रकार बनती हैं :—

महाप्रलय के उपरान्त जब कि समस्त ब्रह्माण्ड शून्य था, और पृथ्वी जलमग्न हो चुकी थी, सृष्टि का कहीं एक भी अंश-चिह्न न था, महासागर के जल-तल में शेषशायी भगवान् विष्णु की नाभि से एक कमलदण्ड निकल कर ऊपर आया। उस दण्ड पर एक अति भव्य और विशाल 'कमल-पुष्प' था। उत्पत्ति के समय वह कमल-पुष्प विकसित न होकर—कली के रूप में बन्द था। जल की सतह के ऊपर—वातावरण के सम्पर्क से जब वह खुला, तो उसके भीतर कमलगट्टे पर एक चतुर्मुख, भव्य रूपाकृति का परम तेजस्वी देवता विराजमान था। वह स्वयं अखिल सृष्टि के कर्त्ता, विश्व के रचनाकार ब्रह्माजी थे। ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जिस ध्वनि (शब्द) का उच्चारण किया, वह 'ॐ' थी। यह 'ॐ' की ध्वनि समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गयी। उसमें अद्भुत तेज और प्रभाव निहित था (आज भी वह प्रभाव अक्षुण्ण है)।

विष्णु के नाभि-कमल पर एकांकी रहते हुए ब्रह्मा की इच्छा हुई कि इस एकान्त और शून्यता को मिटाने के लिए सृष्टि की रचना की जाय। एतदर्थ उन्होंने अपनी दिव्य-शक्ति, योग-बल और अलौकिक-तेज के प्रभाव का उपयोग किया। उन्होंने कई एक पुरुष और नारी-शरीरों की रचना की। वे सभी शरीर सक्रिय और प्राणवन्त थे, उन्हें 'ब्रह्मपुत्र' कहा गया। सांसारिक-सृष्टि की उत्पत्ति हेतु पुरुष और नारी का युग्म (जोड़ा) स्वभावतः आवश्यक होता है। इसी दृष्टिकोण से ब्रह्माजी ने वे पुरुष और नारी-शरीर बनाये थे। उन्होंने उन सभी को आज्ञा दी कि जाकर सृष्टि-रचना करो और पृथ्वी पर सामाजिक-जीवन व्यतीत करते हुए अपनी वंश-

परम्परा आगे बढ़ाओ। दक्ष, मनु और मरीचि आदि विख्यात पुरुष, उन्हीं ब्रह्माजी की आदि रचना के मूर्त्तरूप थे। उन्होंने विभिन्न नारियों से सम्पर्क करके मानव-समाज की स्थापना की।

प्रजापति ब्रह्माजी ने मरीचि को 'अदिति' नाम की नारी के साथ रहने की आज्ञा दी। यही मरीचि कालान्तर में 'कश्यप' नाम से विख्यात हुए। कश्यप और अदिति का जीवन बहुत ही सात्विक, लोकोपकारी, आडम्बर-रहित और तपस्यामय था। वे वानप्रस्थी के रूप में, निरन्तर तपश्चर्या करते रहते थे।

उनकी सन्तानें मातृपक्ष के आधार पर 'देवता' (देववर्ग) प्रसिद्ध हुईं। ब्रह्माजी की दूसरी पुत्री दिति की सन्तानें 'दैत्य' कहलायीं। ब्रह्म-पुत्रों में 'मनु' से मानवों (मनुष्यों) की वंश-परम्परा चली और 'दनु' के वंशज 'दानव' के नाम से विख्यात हुए। आगे चलकर इनमें सत्ताधिकार के लिए वैमनस्य उत्पन्न हो गया. और वे परस्पर लड़ने लगे। दैत्य और दानव सङ्गठित होकर देवताओं पर ऐसा प्रचण्ड आक्रमण करने लगे कि देवताओं का अस्तित्त्व ही सङ्कट में पड़ गया। देव-दानवों का यह संघर्ष प्रायः चलता ही रहता था। कई बार तो ऐसा लगा कि विश्वयुद्ध आरम्भ हो जायेगा और संसार का सर्वनाश होकर ही रहेगा। ऐसे आसन्न सङ्कट में देवताओं की विनाश-कल्पना से व्याकुल होकर कश्यप और अदिति ने सूर्यशक्ति की उपासना की। उनकी उपासना से सन्तुष्ट होकर सूर्यशक्ति ने वरदान माँगने को कहा। इस पर अदिति ने याचना की--'मेरी सन्तानों की रक्षा कीजिए।'

इस पर सूर्यशक्ति ने उन्हें आश्वासन दिया--'चिन्ता न करो, मैं अपने विश्वव्यापी तेज को सारभूत रूप में, सहस्र किरणों से युक्त करके तुम्हारे गर्भ में स्थापित करूँगा। तदनन्तर देवरूप में जन्म लेकर दैत्यों-दानवों को परास्त करके तुम्हारी सन्तानों का सङ्कट दूर कर दूंगा।''

अदिति सन्तुष्ट हो गयीं और उनकी तपस्या से आहूत सूर्यशक्ति, जो उस समय वहाँ केन्द्रित हो गयी थी, पुनः यथावत विश्व-ब्रह्माण्ड में फैल गयी।

कुछ समय के उपरान्त देवी अदिति गर्भवती हुईं। उनके गर्भ में वस्तुतः कोई सामान्य शिशु न होकर, यही सूर्यशक्ति का साररूप अवस्थित हुआ था। सन्तान के प्रति मोह और मङ्गल-कामना की भावना से अदिति अनेक प्रकार के व्रत, उपवास और नियम-कर्म निभाने लगीं। इससे उनका शरीर दिनों-दिनों दुर्बल होने लगा। यह देखकर एक दिन महर्षि कश्यप (अदिति के पति) ने रोष भरे शब्दों में उनसे कहा—

"तुम गर्भवती हो, तुम्हें अपने शरीर को सुखी-प्रसन्न और पुष्ट रखना चाहिए, ताकि गर्भस्थ-शिशु भी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। परन्तु तुम ऐसी हो कि भूखी-प्यासी रहकर उस गर्भाण्ड को नष्ट कर डालने पर तुली हुई हो। यह कैसा विवेक है तुम्हारा ? क्या तुम्हारे इस आचरण से गर्भस्थ अण्ड नष्ट नहीं हो जायेगा ?"

पति के रोष में कितना सन्तान-मोह है, यह जानते हुए भी अदिति ने गम्भीर शान्त-स्वर में उत्तर दिया—"स्वामी ! आप चिन्ता न करें, यह गर्भाण्ड आपका दिया हुआ नहीं, साक्षात् सूर्यशक्ति का प्रसाद है। यह नष्ट हो ही नहीं सकता। यह सदा अविनाशी है, और हम सबके शत्रुओं का संहारक बनेगा। आप धैर्यपूर्वक इसके तेज और पराक्रम को देखें।"

इतना कहते-कहते अदिति ने, जो स्वयं को अपमानित समझकर क्रोधावेश में आ गयी थीं, अपानवायु के वेग से, गर्भस्थ अण्ड का परित्याग कर दिया।

जैसे ही वह परम तेजवान्, प्रकाशपुन्ज और अग्नि जैसा ज्वलन्त-पिण्ड अदिति के गर्भाशय से निकलकर पृथ्वी पर गिरा, उसकी रश्मियों के तेज से दिशाएं दहक उठीं। सर्वत्र प्रकाश और ऊष्मा ने ऐसे विकराल रूप में विस्तार किया कि जान पड़ा—सारा ब्रह्माण्ड इसी में जल-भुन जायेगा। अब कश्यप मुनि घबराये। उन्हें अपनी भूल पर बड़ा परिताप हुआ, और वे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर, उस सूर्य के सार-अंश पिण्ड को साक्षात् सूर्य मानकर क्षमा-याचना करने लगे।

आत्म-ग्लानि भरी कश्यपजी की क्षमा-याचना पर द्रवित होकर आकाश में स्थित सूर्यशक्ति ने घोषणा की—

"अरे कश्यप ! तुमने क्रोध में आकर अपनी पत्नी पर भ्रूण-हत्या का लाञ्छन लगाया है। तुम्हारे मुख से निकला कि इस अण्ड को क्यों मार रही हो ?' एक प्रकार से तुमने इसे मरा हुआ घोषित कर दिया है, और अब इसी के लिए क्षमा-याचना कर रहे हो। अस्तु: जाओ, हम तुम्हें क्षमा करते हैं। परन्तु इस अण्ड की उपेक्षा मत करो। यह अण्ड सहस्रों किरणों से और सहस्रों नामों से युक्त होगा। इसका एक नाम 'मारिताण्ड' भी रहेगा (यही मारिताण्ड—मारित+अण्ड आगे चलकर 'मार्तण्ड' हुआ)।

महर्षि कश्यप को अपनी पत्नी तथा देव-वाणी के प्रति अपूर्व श्रद्धा हो आयी। वे सारा क्रोध और अहङ्कार त्याग कर सहज सात्विक मन से उस अण्ड को साक्षात् सूर्यशक्ति का पिण्ड रूप मानकर, वेद-मन्त्रों द्वारा उसकी स्तुति करने लगे।

कश्यप द्वारा उच्चारित वेद-मन्त्रों से सम्वेदित होकर, थोड़ी देर बाद वह अण्ड फट गया और उसमें से लाल रङ्ग के कमल जैसा शोभायमान, परम कान्तियुक्त, तेजस्वी और सुदर्शन बालक प्रकट हुआ। वह इतनी प्रकाशमान किरणें प्रसारित कर रहा था, जिनके आलोक से समस्त दिशाएं पृथ्वीमण्डल और आकाश तक, सब उद्भासित हो उठे!

वही बालक 'सूर्यदेवता' के नाम से विख्यात हुआ और कालान्तर में उसके रूप, गुण, प्रकृति और प्रभाव के आधार पर अन्य सैकड़ों नामों से उसे स्मरण किया जाने लगा।

सूर्य जैसे तेजवन्त नायक को पाकर देववर्ग का साहस बढ़ गया। उन्होंने दैत्यों को ललकारा! पुनः युद्ध हुआ, परन्तु सूर्य का तेज सहन न कर सकने के कारण दैत्य-दानव सब भाग गये। देवताओं की विजय हुई और सूर्यदेव को समस्त ब्रह्माण्ड का सर्वाधिक तेजस्वी, अजेय, पराक्रमी, विद्वान्, दयालु, दीन-रक्षक, दुष्ट-संहारक देवता मानकर उन्हें विश्व का प्रशासक, दर्शक, नियन्ता और ग्रहराज स्वीकृत किया गया।

तब से आज तक अखण्ड सूर्य आकाशमण्डल में स्थित रहकर अखिल विश्व पर नियन्त्रण करते चले आ रहे हैं।

सौर-परिवार और वंश-वृद्धि

दैत्य-दानवों का पराभव हो जाने पर पुनः देवताओं का राज्य स्थापित हुआ। युद्धकालीन अव्यवस्था दूर हो जाने पर देववर्ग अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गया और उनके पारिवारिक-वैभव की पुनः वृद्धि होने लगी।

सूर्यदेव अब तक कुमार थे। प्रजापति विश्वकर्मा ने उन्हें हर तरह से सुपात्र और सुयोग्य मानकर, अपनी पुत्री 'संज्ञा' के साथ उनका विवाह कर दिया।

संज्ञा और सूर्य का दाम्पत्य-जीवन बहुत प्रेमोल्लास के साथ आरम्भ हुआ। उनके पारस्परिक-सम्पर्क से तीन सन्तानें भी उत्पन्न हुईं—दो पुत्र (वैवस्वत-मनु और यम) और एक कन्या—यमुनाजी (यमुना नदी)। परन्तु जहाँ सूर्यदेव प्रचण्ड तेजवान् थे, वहीं 'संज्ञा' अत्यन्त सुकुमार प्रकृति की, कोमलाङ्गी और शान्त थीं। वह सूर्यदेव की प्रचण्ड शक्ति, उनके तेज को सहन न कर पाती थीं। अतः अपनी रक्षा के लिए उसने योगबल से अपने अनुरूप ही अपनी छाया को प्राणवन्त बनाकर सूर्यदेव के पास रहने की आज्ञा दी—और स्वयं छिपकर 'उत्तरकुरु' में एकान्त-वास करने लगी।

छाया सर्वांशतः संज्ञा का प्रतिरूप थी। वही काया, वही वर्ण, वही

रूप, वही स्वभाव, वही स्वर और वही बुद्धि। सूर्य को इस परिवर्त्तन का पता नहीं चला और वे उसे संज्ञा ही समझते रहे, फलतः दोनों का दाम्पत्य-जीवन प्रेमपूर्वक आगे चलता रहा। छाया ने भी, जिसका नाम 'सम्वर्णा' भी था—कालान्तर में तीन सन्तानों को जन्म दिया, दो पुत्र (संवीर्ण और शनि) तथा एक पुत्री—'तपती' (ताप्ती नदी)। आगे चलकर 'तपती' तत्कालीन महाराजा सम्वारण की पत्नी बनी।

'सूर्य-परिवार' में छाया का स्वभाव धीरे-धीरे मलिन होने लगा। वह अपनी सन्तानों से विशेष मोह रखती, परन्तु संज्ञा की सन्तानों की उपेक्षा कर जाती। यह विरोधाभास सभी सन्तानों को खटकने लगा। वे स्वयं को एक ही माता-पिता से उत्पन्न मानकर, परस्पर बड़े प्रेम से रहते थे। 'मनु' तो गम्भीर थे, अतः सहन कर गये। परन्तु 'यम' में क्रोध की प्रबलता थी, वह माँ की क्षुद्रता से कुपित होकर, उस पर चरण-प्रहार करने के लिए सन्नद्ध हो गया। उसकी इस अशिष्ट उग्रता पर छाया ने उसे शाप दे दिया—"जा, तू जितने वेग से मेरी ओर झपटा है, अब तेरी बुद्धि उतनी ही मन्द हो जायेगी।"

सूर्यदेव को जब छाया की वास्तविकता का, उसके अस्तित्व और स्वभाव का पता चला तो वे कुछ खिन्न हो गये। बाद में जब यम को प्रेतों का अधिपति होने का शाप दे दिया गया तो उन्होंने अपने तेज से छाया का शाप निष्प्रभावी करके, यम को वरदान दिया—"जाओ, पुत्र ! अब से तुम धर्मराज के पद पर आसीन होओगे, और समस्त प्राणियों के जीवन का, उनके कर्म-फल का नियन्त्रण तुम्हारे हाथों में रहेगा।"

इस प्रकार यद्यपि सूर्यदेव ने यम पर लगे माता के अभिशाप को अपने वरदान से क्षीण कर दिया, तथापि छाया के प्रति उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसी क्रुद्ध मनोदशा में उन्होंने प्रतिशोध-भाव से प्रेरित होकर छाया के पुत्र शनि को शाप दे दिया—"तुम्हारी माता में राग-द्वेष और क्रूरता की भावना है, अतः जाओ, तुम्हारी दृष्टि में भी ये दुर्गुण स्थायी-रूप में रहेंगे। तुम्हारी दृष्टि सदैव क्रूरतापूर्ण रहेगी।" यही कारण है कि शनि आज भी अपनी क्रूरतापूर्ण-कुदृष्टि के लिए कुख्यात है।

बाद में सूर्यदेव 'उत्तरकुरु' जाकर संज्ञा से मिले। वहाँ वह अश्विनी (घोड़ी) के छद्म-रूप में विचरण कर रही थी। सूर्यदेव ने अश्व रूप में उससे संसर्ग किया। फलतः उसने दो पुत्रों को (मानवाकार जन्म दिया) वे दोनों पुत्र 'अश्विनीकुमार' के नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे चलकर विश्व-कर्मा द्वारा सूर्य का तेज कम कर दिये जाने पर संज्ञा उनके साथ रहते हुए पूर्ण दाम्पत्य-जीवन बिताने लगी।

आज भी यमराज 'धर्मराज' के रूप में सर्व-स्वीकृत हैं और प्राणि-मात्र के कर्मों का लेखा-जोखा उन्हीं के हाथों में है।

'संज्ञा' के अतिरिक्त सूर्य की और भी दो पत्नियाँ थीं—'राज्ञी' (रात्रि) एवं 'प्रभा'। राजा 'रैवत' की पुत्री 'राज्ञी' जब सूर्य-पत्नी बनी तो उससे भी सूर्य-वंश में वृद्धि हुई। राज्ञी के पुत्र का नाम 'रेवत' था। इसी प्रकार तीसरी पत्नी 'प्रभा' से 'प्रभात' नामक एक पुत्र सूर्यदेव को प्राप्त हुआ, जो अपने शान्त, सुखद, सौन्दर्य के लिए विश्व में विख्यात हुआ। इस प्रकार सूर्यदेव की वंश-परम्परा आरम्भ हुई।

सूर्य के पुत्र-पौत्रादि

भगवान् सूर्य के सब मिलाकर दस पुत्र हुए थे और तीन पुत्रियाँ। उसके बाद सूर्य-पुत्रों का वंश-विस्तार इस प्रकार माना जाता है :—

सूर्य की प्रथम-पत्नी संज्ञा से उत्पन्न वैवस्वत-मनु के दस पुत्र हुए। उनकी नामावली इस प्रकार है :—

1. इक्ष्वाकु, 2. नाभाग, 3. धृष्ट, 4. शर्याति, 5. नरिष्यन्त, 6. प्रांशु, 7. नृग, 8. दिष्ट, 9. कण्व, 10. पृष्धु।

इनके अतिरिक्त मनु को एक पुत्री भी प्राप्त हुई, जिसका नाम 'इला' प्रसिद्ध हुआ। युवती होने पर इला का विवाह 'बुध' के साथ सम्पन्न हुआ। इला और बुध के पारस्परिक सम्पर्क से 'पुरुरवा' का जन्म हुआ। इस बालक के जन्मोपरान्त इला ने कुछ यौगिक-क्रियाओं द्वारा यौन-परिवर्त्तन करके स्वयं को पुरुष-रूप में परिवर्त्तित कर लिया। पुरुष-शरीर प्राप्त करने के पश्चात् (नारी से नर बन जाने के बाद) इला का नाम 'सुद्युम्न' प्रसिद्ध हुआ। सुद्युम्न ने पुनः एक राजकुमारी से विवाह किया और तीन पुत्रों का पिता बना—1. उत्कल, 2. जय, 3. विनताश्व।

सूर्यदेव के दस पुत्रों में केवल इक्ष्वाकु की वंश-परम्परा आगे बढ़ सकी, (जिसकी शाखाएं आज भी सूर्यवंशीय-क्षत्रियों के रूप में विद्यमान हैं), अन्य नौ पुत्रों के कुटुम्ब 2-3 पीढ़ियों के पश्चात् निश्शेष हो गये। उनमें एक नाम प्रसिल रहा—'राजा अम्बरीष। ये सूर्य के द्वितीय पुत्र—'नाभाग' की सन्तान थे। अपने धर्माचरण और वैष्णवी-भक्ति के कारण आज भी उनका नाम देवताओं की भाँति समादृत है।

'धृष्ट' से उत्पन्न सन्तानें 'धार्ष्टक' कहलायीं। शर्याति को केवल दो सन्तानें प्राप्त हो सकीं—सुकन्या और आनर्त।

चूँकि इक्ष्वाकु के अतिरिक्त और किसी की वंश-परम्परा आगे नहीं बढ़ सकी,इसलिए उनका विवरण अज्ञात है। केवल इक्ष्वाकु की पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है, जो यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है—सूर्यवंश की परम्परा में अर्थात् सूर्यवंशीय-नरेशों में सर्वप्रथम इक्ष्वाकु का नाम मिलता है। इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम 'विकुक्षि' था। विकुक्षि के पुत्र काकुत्स्थ हुए। आगे की पीढ़ियों को क्रमशः इस प्रकार समझ सकते हैं :—

काकुस्थ, पृथु, युवनाश्व, श्रावन्तक, बृहदश्व, कुवलाश्व, (धुन्धमार), दृढ़ाश्व, दण्ड, कपिल। दृढ़ाश्व, हर्यश्व, प्रमोदक। हर्यश्व, निकुम्भ रोहताश्व, अकृशाश्व, रणाश्व, युवनाश्व, मान्धाता, पुरुकुत्स, मुचुकुन्द। पुरुकुत्स, त्रयदस्यु (सम्भूत), सुधन्वा, त्रिधन्वा, तरुण, सत्यव्रत, हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व, वृक, बाहु, सगर, 60 हजार पुत्र, असमञ्जस, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, नाभाग, अम्बरीष, सिन्धुद्वीप, श्रतायु, ऋतुपर्ण, कल्माषपाद, शर्वकर्मा, अनरण्य, निघ्न, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न। रामचन्द्र—लव, कुश। भरत—लक्ष, पुष्कल। लक्ष्मण—अङ्गद, चित्रकेतु। शत्रुघ्न—सुबाहु, शत्रुघाती। आगे चलकर सूर्यवंश की अनेक शाखाएं हुईं, जिनमें कई एक आज भी विद्यमान हैं।

3 सूर्य के विभिन्न नाम

अनेकानेक घटना-प्रसङ्गों, पौराणिक-सन्दर्भों तथा स्थान-काल के आधार पर, सूर्य को अनेक नामों से स्मरण किया गया है। किसी भी संस्कृति अथवा भाषा में देखा जाये तो प्रत्येक देवी-देवता अथवा भौतिक-पदार्थ के एकाधिक नाम प्राप्त होते हैं। एक ही व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध कराने वाले विभिन्न शब्द 'पर्यायवाची' कहे जाते हैं। जिस प्रकार कमल, जल, वायु और अग्नि के अनेक पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं, ठीक उसी प्रकार देवी-देवताओं को भी अनेकानेक नामों से अभिहित किया गया। भगवान शिव और विष्णु को तो एक-एक हजार नामों से स्मरण किया जाता है। भारतीय-अध्यात्म के क्षेत्र में, सगुणोपासना के अन्तर्गत, 'विष्णु-सहस्रनाम' और 'शिव-सहस्रनाम' बहु-विख्यात स्तोत्र हैं। देवीजी (शक्ति अथवा दुर्गाजी) को भी बहुत-से नामों से स्मरण किया जाता है। ठीक इसी प्रकार भगवान सूर्य के भी अनेक नाम हैं। नामानुसार उनके श्री-विग्रहों के रूपाकार में भी अन्तर होता है। तथापि, किसी भी नाम से सूर्यदेव का स्मरण करें, अथवा उनके किसी भी श्री-विग्रह की पूजा करें, अथवा उनका प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए, उनके किसी नाम अथवा मन्त्र से उपासना करें, वे अवश्य अपनी कृपा प्रदान करते हैं।

द्वादश आदित्य

भगवान सूर्य की एक संज्ञा 'आदित्य' भी है। आदित्य रूप में सूर्य के बारह अवतार माने जाते हैं। उनके अलग-अलग नाम, रूप, गुण और स्मरण-विधान हैं। श्रद्धापूर्वक किसी भी नाम का जप करते हुए उस 'आदित्य' रूप की कृपा प्राप्त की जा सकती है।

द्वादशादित्यों के नाम इस प्रकार हैं :—

1. इन्द्र
2. धाता
3. त्वष्टा
4. पूषा
5. अर्यमा
6. भग
7. विवस्वान
8. विष्णु
9. अंशुमान
10. पर्जन्य
11. वरुण
12. मित्र

(कहीं-कहीं क्रमान्तर से, तीसरा नाम 'पर्जन्य' है, शेष सब यथा-क्रम हैं।)

महाभारत के अनुसार द्वादश-आदित्य

'महाभारत' आर्य-संस्कृति का सर्वपूज्य ऐतिहासिक-ग्रन्थ है। उसमें धर्म, दर्शन, नीति और योग-वैराग्य के अनेक पक्षों पर विस्तार से विवेचना प्राप्त होती है। सूर्य-साधना के प्रसङ्ग में, महाभारतकार—महर्षि व्यासजी ने इस क्रम से द्वादश-आदित्यों की गणना की है :—

1. इन्द्र (शक्र)
2. अर्यमा
3. धाता
4. त्वष्टा
5. पूषा
6. विवस्वान्
7. सविता
8. मित्र
9. वरुण
10. अंशु
11. भग
12. विष्णु

मासानुसार आदित्योपासना क्रम

वैसे तो श्रद्धा-भक्ति के आधार पर कभी भी. प्रतिदिन, सूर्य भगवान के किसी भी नाम-रूप की उपासना की जा सकती है, परन्तु शास्त्रीय-विधि के अनुसार बारह आदित्यों का वर्ष के बारह महीनों में उपासना का एक विशेष क्रम निश्चित है। उस क्रम से प्रत्येक मास के लिए एक भिन्न आदित्य (सूर्यावतार) का विधान किया गया है। इन नामों का उनके निर्धारित मासों से आध्यत्मिक, पर्यावरणीय और भौतिक रूप में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः उत्तम यही माना जाता है कि उपरोक्त बारह आदित्यों की उपासना निर्धारित मास-क्रम से की जाय। यथा—

मास नाम			द्वादश आदित्य
1. मधु	(चैत्र)	चैत	धाता
2. माधव	(वैशाख)	वैशाख	अर्यमा
3. शक्र	(ज्येष्ठ)	जेठ	मित्र
4. शुचि	(आषाढ़)	असाढ़	वरुण
5. नभ	(श्रावण)	सावन	इन्द्र (शक्र)
6. नभस्य	(भाद्रपद)	भादों	विवस्वान्
7. तप	(आश्विन)	कुआर	पूषा
8. तपस्य	(कार्तिक)	कातिक	क्रतु (पर्जन्य)
9. सह	(मार्गशीर्ष)	अगहन	अंशु
10. पुष्य	(पौष)	पूस	भङ्ग

11. इन्द्र	(माघ)	माघ	त्वष्टा
12. ऊर्ज	(फाल्गुन)	फागुन	विष्णु

जहाँ तक सूर्य देवता के किसी नाम की वरीयता का प्रश्न है—सभी नाम समान प्रभावी हैं। कारण कि वे एक ही प्रधान-बिन्दु की ओर संकेत करते हैं--भगवान सूर्य की ओर। सूर्याराधना का यह फल प्रसिद्ध है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम् ।
सर्वं सूर्यं प्रसादेन तदशेषं व्यपोहति ।।

और, यह भी कि—

एकाहेनापि यद् भानो पूजायाः प्राप्यते फलम् ।
यथोक्त दक्षिणैः विप्रैः न तत् क्रतु शतैरपि ।।

बारह आदित्यों की अवस्थिति और प्रभाव

भगवान आदित्य अर्थात् सूर्य देवता के ये बारहों नाम, उनके भिन्न-भिन्न बारह स्वरूपों की संज्ञाएं हैं। प्रत्येक स्वरूप (मूर्ति-आकार) का रूपाकार तथा स्थिति-स्थान एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। कौन-सा आदित्य रूप कहाँ निवास करता है, और उसका क्या प्रभाव है, इसका संक्षिप्त-परिचय इन शब्दों में दिया जा सकता है :—

1. इन्द्र—यह आदित्य-भगवान् का प्रथम स्वरूप है। अर्थात् भगवान सूर्य का एक अवतार (रूप) इन्द्र है। जिन देवाधिपति इन्द्र की प्रशंसा पुराणों में प्राप्त होती है, वह वास्तव में सूर्य (आदित्य) का ही एक अवतार हैं। 'इन्द्र' नामक यह आदित्य-स्वरूप 'देवराज' के पद पर आसीन हैं। यह सर्वाधिक शक्तिशाली अवतार है। देववर्ग के शत्रुओं का दमन करने में यही सक्षम है। देव-रक्षा इसका प्रधान कर्त्तव्य है।

2. धाता—सूर्यदेव का दूसरा अवतार (श्री-विग्रह) धाता नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रजापति के रूप में प्रतिष्ठित है और विविध प्रकार के प्रजावर्ग, (जन-समुदाय) की सृष्टि करता रहता है। इसे सृष्टि-कर्त्ता भी कहते हैं।

3. पर्जन्य—सूर्य देवता का तीसरा रूप पर्जन्य है, जो मेघ-मण्डल में (बादलों में) निवास करता है। इसी की किरणों के प्रभाव से बादल द्रवीभूत होकर जल बरसाते हैं।

4- त्वष्टा—भगवान सूर्य के चौथे अवतार 'श्री त्वष्टा' हैं। इनका निवास समस्त वनस्पति-जगत् है। पेड़-पौधों, लता-बेलों और औषधियों में निवास करने वाले त्वष्टा देवता, अपने तेज से उन सबको प्रभावशाली बनाये रहते हैं।

5. पूषा—पञ्चम आदित्य पूषा का वास अन्न में होता है। सभी प्रकार के धान्य पूषा देवता से प्रभावित हैं। उन्हीं के तेज प्रभाव से अन्न में पौष्टिकता आती है और वे मानव-समाज का पोषण करने में समर्थ होते है। समस्त अन्नों में जो स्वाद, पौष्टिक-तत्व, शक्ति और स्निग्धता विद्यमान है, वह वास्तव में पूषा का ही प्रभाव है। मानव-समाज (प्रजावर्ग) के पालन-पोषण में अन्न को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है और वह महत्व पूषा देवता की देन है।

6. अर्यमा—वायु रूप में समस्त चराचर, देव, मानव और जीव-जन्तु तथा वनस्पति-जगत् को प्रभावित करने वाले वायु देवता वास्तव में भगवान आदित्य के छठे अवतार (स्वरूप) हैं।

7. भग—समस्त प्राणियों के शरीर में अङ्ग-विशेष के रूप में स्थित रहने वाले भग देवता—श्री आदित्यदेव के सातवें रूप है। देहधारी प्राणियों तथा दृश्य-अदृश्य वैभव में निवास करने वाले भग देवता शरीर में चेतना, काम-शक्ति और जीवन्तता का पोषण करते हैं।

8. विवस्वान—सूर्यदेवता का आठवाँ अवतार-स्वरूप साक्षात् अग्नि देव का है। अर्थात् अग्निदेव सूर्य का वह रूप है, जिसे विवस्वान् की संज्ञा दी गयी है। इसका आशय यह है कि अग्नि में जो ऊष्मा अर्थात् ताप तत्व है, वह स्वयं सूर्य देवता का अंश है—विवस्वान स्वरूप। कृषि और फलों का पाचन, अतिरिक्त जल का शोषण, शीत निवारण और प्राणियों द्वारा खाये हुए पदार्थ (भोजन) का पाचन यही अग्नि करती है। इस प्रकार जहाँ भी आग, गर्मी, ऊष्मा हो, वहाँ विवस्वानदेव की उपस्थिति मानी जाती है।

9. विष्णु—देववर्ग के शत्रुओं का संहार करने तथा समस्त सृष्टि का पालन करने वाले देवता भगवान विष्णु, वास्तव में सूर्य देवता के वह अवतार-स्वरूप हैं, जिसे द्वादशादित्यों में भी विष्णु की संज्ञा दी गयी है। वैसे भी जब भगवान का कोई अवतार (देव-शत्रुओं के नाशार्थ) होता है, तो उसे 'विष्णु' रूप में भगवान सूर्य का नवाँ अवतार माना जाता है।

10. अंशुमान—वायुरूप में प्राणतत्व बनकर जो आदित्य-स्वरूप समस्त प्राणियों को सजग, सतेज और उत्फुल्ल बनाये रहता है, उसे अंशुमान नाम से अभिहित किया गया है। आशय यह है कि वायु में भी सूर्य का तत्त्व समाहित है। एक प्रकार से अग्नि और वायु को सूर्य का परिवर्तित रूप अथवा अंश कहा जा सकता है।

11. वरुण—जल-तत्त्व का प्रतिनिधित्व करने वाला देवांश वास्तव में सूर्य का ही अंश है। उसी को वरुण कहते हैं। जल की उपयोगिता सर्व

ज्ञात है। जैसे वायु और अग्नि, सृष्ठि के लिए सर्वाधिक जीवनोपयोगी तत्त्व हैं, ठीक उसी प्रकार जल भी अखिल सृष्टि का जीवनाधार है। जल के अभाव में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और मानव किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता। भूमि, आकाश, जीव-जगत् और वनस्पति, सभी को जल की आवश्यकता होती है। जल के प्रमुख अधिष्ठाता श्री वरुणदेव हैं, जो सूर्य के ग्यारहवें स्वरूप माने जाते हैं। उनकी अवस्थिति सदैव जल में रहती है और जल पर निर्भर रहने वाले समस्त प्राणी उन्हीं से पोषण पाते हैं!

12. मित्र—आदित्यों में बारहवें और अन्तिम स्वरूप (श्री-विग्रह) का नाम मित्र है। चन्द्र-नदी (कुछ विद्वानों के मतानुसार चन्द्रभागा नदी) के तट पर तपस्या करके समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का हित करने की क्षमता अर्जित करने वाले मित्रदेवता, वास्तव में सूर्य के ही प्रतिरूप हैं। यह बारहों आदित्य प्रकारान्तर से चराचर में व्याप्त है और अपने प्रभाव से समस्त लोकों का पालन, नियन्त्रण और अवलोकन करते हैं।

सूर्य के अन्य बारह नाम

1. आदित्य, 2. सविता, 3. सूर्य, 4. मिहिर, 5. अर्क, 6. प्रभाकर, 7. मार्त्तण्ड, 8. भास्कर, 9. भानु, 10. चित्रभानु, 11. दिवाकर, 12. रवि।

अमरकोष के अनुसार

'अमरकोष' संस्कृत वाङ्मय का प्रतिष्ठित कोश-ग्रन्थ है। उसमें 'सूर्य' के पूर्वोक्त बारह नामों (द्वादश आदित्य) के अतिरिक्त निम्नलिखित इकत्तीस नामों का भी उल्लेख मिलता है।

1. सूर
2. आदित्य
3. द्वादशात्मा
4. दिवाकर
5. भास्कर
6. अहस्कर
7. ब्रध्न
8. प्रभाकर
9. विभाकर
10. भास्वान्
11. सप्ताश्व
12. हरिदाश्व
13. उष्णरश्मि
14. विकर्तन
15. अर्क
16. मार्त्तण्ड
17. मिहिर
18. अरुण
19. द्युमणि
20. तरणि
21. चित्रभानु
22. विरोचन

23. विभावसु	28. हंस
24. ग्रहपति	29. सहस्रांशु
25. त्विषांपति	30. तपन
26. अहर्पति	31. रवि
27. भानु	

एक तालिका—और सोलह नाम

सूर्य की असंख्य किरणों की भाँति उनके असंख्य नाम भीं हैं। समय-समय पर महर्षियों ने कुछ विशेष नामों की गणना की है, वे ही सामान्य रूप में उपलब्ध और प्रचलित हैं। सूर्य के सोलह नामों की एक तालिका और प्राप्त होती है :—

1. पद्माक्ष	9. प्रद्योतन
2. तेजसां राशि	10. दिनमणि
3. छायानाथ	11. खद्योत
4. तमिस्रहा	12. लोकबान्धव
5. कर्मसाक्षी	13. इन
6. जगत्चक्षु	14. धामनिधि
7. लोकबन्धु	15. अंशुमाली
8. त्रयीतनु	16. अञ्जनीपति

ऋग्वेदीय छः नाम

ऋग्वेद में सूर्य के निम्नलिखित छः नामों का उल्लेख हुआ है :—

1. मित्र	4. वरुण
2. अर्यमा	5. दक्ष
3. भग	6. अंश

सूर्य के इक्कीस नाम

आदि मनीषियों ने दीर्घकालीन-शोध और अनुसन्धान के बाद यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि ध्वनि-शास्त्र के अनुसार,किसी को विशिष्ट ध्वनि-समूह (नाम—सम्बोधन शब्द) के द्वारा बुलाया जाय, पुकारा जाय अथवा उसका स्तवन-आह्वान किया जाय तो इस क्रिया का कुछ विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने सूर्य देवता की आराधना उपासना के लिए जिन इक्कीस नामों को विशेष प्रभावशाली मानकर दैनिक जप अथवा स्तोत्र-पाठ के लिए उपयोगी और शीघ्र प्रभावी बताया है, वे निम्नलिखित हैं :—

1. विकर्तन
2. विवस्वान
3. मार्त्तण्ड
4. भास्कर
5. रवि
6. लोकप्रकाशक
7. श्रीमान्
8. लोकचक्षु
9. महेश्वर
10. लोकसाक्षी
11. त्रिलोकेश
12. कर्त्ता
13. हर्त्ता
14. तमिस्रहा
15. तपन
16. तापन
17. शुचि
18. सप्ताश्ववाहन
19. गभस्तिहस्त
20. ब्रह्म
21. सर्वदेवनमस्कृत

ब्रह्म-पुराण में इन इक्कीस नामों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति नित्यप्रति प्रातः सूर्य-दर्शन करते हुए इन (उपरोक्त) नामों से भगवान भास्कर का स्तवन करता है, वह नीरोग, स्वस्थ, सबल, आर्थिक-दृष्टि से सम्पन्न और यशस्वी होता है। सूर्य की कृपा से उसका भौतिक-जीवन बहुत ही सुखमय रहता है।

सूर्य के अष्टोत्तरशत नाम

एक बार ऋषि-मुनियों की मण्डली में ब्रह्माजी का प्रवचन हो रहा था। ब्रह्माजी ने सूर्य के अनेक नामों का प्रभाव वर्णन करते हुए कहा कि यदि भगवान् भास्कर के अष्टोत्तर-शत नामों से उनका नियमित और श्रद्धापूर्वक स्मरण अथवा पूजन, जप, तप किया जाय तो निश्चय ही साधक की मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं। इस पर मुनियों ने आग्रह किया कि हे प्रभो ! हम तो वीतराग हैं, हमारी कोई लालसा नहीं है। परन्तु यदि आप भगवान् भास्कर के वे सभी 108 नाम हमें बता दें तो हम सामान्य-जनों को उपदेश देकर उन्हें सूर्योपासना की प्रेरणा दे सकेंगे। इस प्रकार उनका कल्याण होगा।

लोक-हितार्थ की गयी मुनियों की इस प्रार्थना पर ब्रह्माजी सहज ही कृपालु हो उठे। उन्होंने बड़े प्रसन्न मन से तत्काल ही मुनियों को भगवान भास्कर के अष्टोत्तरशत (एक सौ आठ) नाम इस प्रकार बताकर उपकृत किया :—

1. सूर्य
2. अर्यमा
3. भग
4. त्वष्टा
5. पूषा
6. अर्क

7. सविता
8. रवि
9. गभस्तिमान
10. अज
11. काल
12. मृत्यु
13. धाता
14. प्रभाकर
15. पृथ्वी
16. आप
17. तेज
18. रव
19. वायु
20. परायण
21. इन्द्र
22. विवस्वान
23. दीप्तांशु
24. शुचि
25. सौरि
26. वैश्रवण
27. यम
28. वैद्युत
29. अग्नि
30. जठराग्नि
31. ऐन्धन
32. तेजपति
33. धर्मध्वज
34. वेदकर्त्ता
35. वेदाङ्ग
36. वेदवाहन
37. कृत
38. सर्वामराश्रय
39. कला
40. काष्ठा
41. मुहूर्त्त
42. क्षपा
43. याम
44. क्षण
45. संवत्सरकर
46. अश्वत्थ
47. कालचक्र
48. विभावसु
49. पुरुष
50. शाश्वत
51. योगी
52. व्यक्ताव्यक्त
53. सनातन
54. कालाध्यक्ष
55. प्रजाध्यक्ष
56. विश्वकर्मा
57. तमोनुद
58. वरुण
59. सागर
60. अंश
61. जीमूत
62. जीवन
63. अरिहा
64. भूताश्रय
65. भूतपति
66. सर्वलोकनमस्कृत
67. सृष्टा
68. सम्वर्तक
69. सर्वादि
70. अलोलुप
71. अनन्त
72. कपिल
73. भानु
74. कामद

75. सर्वतोमुख
76. जय
77. विशाल
78. वरद
79. सर्वभूतनिवेषित
80. मन
81. सुपर्ण
82. भूतादि
83. शीघ्रग
84. प्राणधारण
85. धन्वन्तरि
86. धूमकेतु
87. आदिदेव
88. अदितिपुत्र
89. द्वादशात्मा
90. रवि
91. दक्ष
92. पिता
93. माता
94. पितामह
95. स्वर्गद्वार
96. प्रजाद्वार
97. मोक्षद्वार
98. त्रिविष्टप
99. देहकर्ता
100. प्रशान्तात्मा
101. विश्वात्मा
102. विश्वतोमुख
103. चराचरात्मा
104. सूक्ष्मात्मा
105. मैत्रेय
106. करुणान्वित
107. दिनकर
108. पतंग

यद्यपि इस नामावली में मतभेद भी है, कारण कि कोश-ग्रन्थों में तथा अनेक पौराणिक-सन्दर्भों में भी, उपरोक्त नामों के अतिरिक्त तरणि, तमारि, अरुण, दिवाकर और अंशुमाली जैसे अनेक शब्द प्राप्त होते हैं, जो सूर्य के लिए बहुत प्राचीन-काल से प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं। हो सकता है, ग्रन्थों के पाठान्तर के कारण ऐसी तालिकाएं अधूरी लगती हों। वस्तुतः सूर्य के 108 ही नहीं, और अधिक नाम हैं। अब यह मनीषियों और विद्वानों की अपनी आस्था पर निर्भर है कि उन्होंने किन 108 नामों को वरीयता दी।

जहाँ तक सूर्योपासना का सम्बन्ध है, मेरी अपनी धारणा है कि भगवान् सूर्य एक हैं। उनके नाम, प्रतिरूप और अंश चाहे जितनी संख्या में परिवर्त्तित कर लिये जायें, श्रद्धा-भक्ति के द्वारा स्मरण किये जाने पर (भले ही वह स्मरण उनके किसी भी नाम से किया गया हो) वे साधक पर अपनी कृपा-दृष्टि अवश्य फेरते हैं। और, किसी भी देवता की कृपा प्राप्त हो जाये, उसकी साधना-उपासना का यही चरम लक्ष्य होता है। अतः देवोपासना में इष्टदेवता के सभी नाम समान रूप से प्रभावी होते हैं। मुख्य बिन्दु है—**श्रद्धा**। अटूट **श्रद्धा** ही सफलता की सीढ़ी है।

अतिरिक्त द्वादश सूर्य

उपरोक्त नामावली के अतिरिक्त एक द्वादश-नामावली और प्रसिद्ध है। मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन स्नानोपरान्त, सूर्यनारायण के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो जाय और इन बारह नामों से उनका स्तवन करे, अथवा दैनिक-पूजा के उपरान्त यथा सामर्थ्य विधिवत्, परन्तु पूर्णनिष्ठा के साथ इन बारह नामों का जप करे (12 माला प्रतिदिन), तो उसे समस्त भौतिक-सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं। ये बारहों नाम इतने प्रभावशाली हैं कि यदि इनमें से किसी भी एक नाम का नित्यप्रति श्रद्धा-शुचितापूर्वक बारह माला जप किया जाय, तो साधक को बहुत कुछ प्राप्त होता है। इस नामावली के जप-प्रभाव की प्रशंसा में यहाँ तक कहा गया है कि इन नामों से सूर्यदेव का स्तवन करने वाला ब्राह्मण अनेक जन्मों तक विद्वान तथा धन-सम्पन्न रहया है। वैश्यों को प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त होती है और क्षत्रियों को राज्य-लाभ का सुख प्राप्त होता है। शूद्र भी इस जप से लाभान्वित होकर सौम्य, धर्मानुरागी, साधु-भक्त और सात्त्विक विचारों वाले हो जाते हैं। यदि निम्बार्क-क्षेत्र में जाकर (राजस्थान में आधुनिक पुष्कर-क्षेत्र के पास) कोई यह साधना करे तो वह अवश्य ही कल्पनातीत लाभ प्राप्त कर सकता है।

भगवान सूर्य के वे अतिरिक्त बारह नाम निम्नलिखित हैं :—

1. आदित्य, 2. भास्कर, 3. भानु, 4, चित्रभानु, 5. विश्व-प्रकाशक, 6. तीक्ष्णांशु, 7. मार्त्तण्ड, 8. सूर्य, 9. प्रभाकर, 10. विभा-वसु, 11. सहस्रांशु, 12. पूषन्।

सूर्य और ज्योतिर्लिङ्ग

महर्षियों की मान्यता है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि, ये तीनों ज्योति-पुञ्ज, उन महेश्वर के तीन नेत्र हैं, जो समस्त संसार का नियन्त्रण करते हैं। प्रसंगान्तर से उन्हीं महेश्वर को 'शिव' की संज्ञा भी दी गयी है। अस्तु तीन नेत्रों से युक्त महेश्वर, वस्तुतः सूर्य भगवान का रुद्रावतार हैं। रुद्रों की संख्या 11 है, परन्तु प्रसंग-भेद से उनके नाम भिन्न-भिन्न हैं। रुद्र और शिव को मूलतः एक मानने वालों का प्रतिपादन है कि चूंकि आदित्यों (सूर्य) की संख्या बारह है (द्वादशादित्य), अतः रुद्र (शिव) के रूप में सूर्य के भी बारह रूप स्वीकार्य हैं। सूर्य की ज्योति बारह प्रकार की है, फलतः प्रत्येक ज्योति से एक पृथक् ज्योतिर्लिंग की परिकल्पना की गयी। जो भी हो, भारत में द्वादश ज्योतिर्लिंग आज भी परम पावन, पूज्य और श्रद्धा के

केन्द्र हैं। अब कोई उन्हें शिव के अवतार कहे, कोई सूर्य के अवतार (रुद्र के रूप में) कहे, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ज्योतिर्लिगों में शिव, रुद्र और सूर्य—इन तीनों का प्रभाव समाहित है, इसमें कोई सन्देह नहीं। तर्क-वितर्क से परे जाकर, जन-सामान्य आज भी, लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष उन ज्योतिर्लिगों का दर्शन-पूजन करने जाते हैं और लौटकर एक प्रकार की अलौकिक सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। वैसे, प्रत्यक्ष में ये बारहों ज्योति लिंग श्री शिवजी के ही श्री-विग्रह हैं, परन्तु उनमें सूर्यदेवता का भी वास है—ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं है। अस्तु: भारत के वर्त्तमान द्वादश ज्योतिर्लिगों की अवस्थिति इस प्रकार मानी जाती है :—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च, श्री शैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालं, ओंकारममलेश्वरम् ।।

केदारं हिमवत् पृष्ठे, डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं, त्र्यम्बकं गौमती तटे ।।

वैद्यनाथं चिताभूमौ, नागेशं दारुका वने ।
सेतुबन्धे च रामेशं, घुश्मेशं शिवालये ।।

1—सौराष्ट्र (गुजरात) में सोमनाथ, 2—श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, 3—उज्जैन में महाकालेश्वर, 4—नर्मदातट (मान्धाता-क्षेत्र) पर ओंकारेश्वर (अमलेश्वर), 5—हिमालय-प्रदेश में केदारनाथ, 6—डाकिनी-क्षेत्र में भीमशङ्कर, 7—काशी में विश्वनाथ, 8—गोदावरी-तट पर त्र्यम्बकेश्वर, 9—चिता-भूगि (बिहार) में वैद्यनाथ, 10—दारुक-वन में नागेश्वर, 11—सेतुबन्ध (भारत की दक्षिणी सीमा) में रामेश्वर और 12—शिवालय प्रदेश में घुश्मेश्वर—ये बारह ज्योतिर्लिंग हैं। ये शिव-भक्तों द्वारा तो पूजे ही जाते हैं, सूर्य-भक्त भी इन्हें पूरी श्रद्धा से पूजते हैं, कारण कि शास्त्रीय-विवेचन में इन दोनों देवताओं (देव-शक्तियों)—शिव और सूर्य को परस्पर अभिन्न स्वीकार किया गया है।

ग्यारह रुद्र

यद्यपि एकादश रुद्रों की नामावली विवेचना-भेद के आधार पर कई रूपों में, बड़े विस्तार से प्राप्त होती है, परन्तु वह सारा विवेचन सामान्य-पाठकों के लिए बोधगम्य नहीं है। उसका सूर्योपासना से कोई सरल-घनिष्ट सम्बन्ध भी नहीं है। अतः प्रसंग-पूर्त्ति के लिए यहाँ एकादश रुद्रों की दो तालिकाएं प्रस्तुत की जा रही है। व्यावहारिक-दृष्टि से ये सरल तो हैं ही, साधना में भी प्रायः इन्हीं का उल्लेख मिलता है।

अधिभूत के ग्यारह रुद्र—1. पृथ्वी, 2. जल, 3. तेज, 4. वायु, 5. आकाश, 6. सूर्य, 7. चन्द्र, 8. आत्मा, 9. पवमान, 10. पाठक, 11. शुचि।

सूर्यमण्डल के ग्यारह रुद्र—1. विरूपाक्ष, 2. भैरव, 3. नकुलीश, 4. सेनानी, 5. त्र्यम्बक, 6. सावित्र, 7. जयन्त, 8. पिनाकी, 9. अपराजित, 10 अहिर्बुन्ध्य, 11. अज एकपात।

अन्तरिक्षीय एकादश रुद्र—अन्तरिक्ष में व्याप्त (निवास करने वाले) ग्यारह रुद्र इस प्रकार माने जाते हैं :—

1. भ्राजमान, 2. व्यवदात, 3. वासुकि, 4. वैद्युत, 5. रजत, 6. पुरुष, 7. श्याम, 8. कपिल, 9. अतिलोहित, 10, ऊर्ध्व, 11. अवपतन।

अग्निमण्डल की सप्त जिह्वाएं

सूर्यमण्डल से बारह प्रकार की ज्योतियाँ निकलती हैं। मान्यता है कि प्रत्येक ज्योति पृथक्-पृथक् एक-एक शिव-लिंग में समाहित है। इसी आधार पर द्वादश ज्योतियों से समलंकृत द्वादश ज्योतिर्लिंगों की परिकल्पना की गयी है। ज्योतिर्लिंगों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ज्योतियों के अतिरिक्त, सूर्य-बिम्ब से, अर्थात् सूर्य के अग्निमण्डल से, लपटों के रूप में सप्त-जिह्वाएं निकलती रहती हैं। उन असह्य प्रकाश वाली, लपलपाती हुई, सूर्यमण्डल की (अग्निमण्डल) जिह्वाओं का वर्णन 'मुण्डकोपनिषद्' में इस प्रकार प्राप्त होता है :—

काली कराली च मनोजवा च,
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
विस्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी,
लेलायमाना इति सप्तजिह्वा॥

(शक्ति-साधना—देवी की उपासना में भी साधकजन इस श्लोक का जप करते हैं।)

सूर्य की सप्त रश्मियाँ

हम सामान्य बातचीत में भी सूरज की सतरंगी किरणों की चर्चा करते सुनते हैं। वस्तुतः यह कल्पना नहीं, एक आध्यात्मिक सत्य है। प्राचीन ग्रन्थों में सूर्य का विवेचन करते हुए बताया गया है कि सूर्य से सात

प्रकार की रश्मियाँ निकलती हैं, जो सौर-मण्डल के समस्त ग्रहों को,नक्षत्र-मण्डल को प्रभावित करके, उन्हें गतिशील बनाये रहती हैं।

संक्षेप में यहाँ सूर्य से निकलने वाली सप्त रश्मियों और उनके प्रभाव का उल्लेख किया जा रहा है।

1, सुषुम्णा--चन्द्रमा में जो शीतलता ओर अमृत-तत्व है, वह सूर्य की इन्हीं रश्मियों से उत्पन्न होकर चन्द्रमा को प्राप्त होता है। ये रश्मियाँ चन्द्रमा की कलाओं, छवि, ज्योत्सना, शीतलता और पोषक-तत्वों पर नियन्त्रण करते हुए, उन्हें सन्तुलित और अक्षुण्ण बनाये रहती हैं। कृष्ण-पक्ष में निरन्तर क्षीण होते जा रहे चन्द्रमा की कलाओं को नियन्त्रण में रखकर, शुक्लपक्ष में उनका सम्बर्धन करती है। इस प्रकार सुषुम्णा रश्मि द्वारा पोषित चन्द्रमा समस्त जड़-चेतन पर अपने प्रकाश के माध्यम से अमृत वर्षा करता है। यह एक वैज्ञानिक-सत्य है कि चाँदनी का स्पर्श एक प्रकार की पुलकभरी सिहरन, एक आनन्दमयी तुष्टि, क्लान्ति का नाश करके एक प्रकार की विमुधि भरी विश्रान्ति और मुग्धकारी चेतना प्रदान करता है। आशय यह है कि चन्द्रमा की किरणों में जो शीतल मादकता और पुलकन भरी सिहरन होती है, वह इन्हीं सुषुम्णा-रश्मियों से उत्पन्न होती है।

2. सुरादना—चन्द्रमा में निहित अमृत-तत्व की रक्षा करने वाली ये सुरादना रश्मियाँ, सूर्य से ही चन्द्रमा को प्राप्त होती हैं। प्रकारान्तर से सभी देवता सूर्य रश्मियों द्वारा अमृत-तत्व प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि (अमृत-पान की इसी क्रिया से) प्रायः सभी देवताओं को चन्द्रमा कहा जाता है।

3. उदन्वसु—सौर-मण्डल का एक प्रमुख ग्रह 'मंगल' है। पौराणिक-मान्यता के अनुसार वह इन्हीं उदन्वसु-रश्मियों से उत्पन्न हुआ है। मङ्गल अपने प्रभाव से समस्त प्राणियों के शरीर में रक्त-संचार करता है। वास्तव में उसमें यही रश्मियाँ निहित हैं, और उससे निकल कर प्राणियों के शरीर का रक्त-सन्तुलन बनाये रखती हैं। यदि मङ्गल से सीधी उदन्वसु किरणें किसी के शरीर को प्राप्त हो रही हों तो यह निश्चित है कि वह व्यक्ति समस्त प्रकार के रक्त-विकारों, रक्तज-रोगों से मुक्त रहकर स्वास्थ्य, शक्ति, ओज-तेज और भौतिक-वैभव से अवश्य ही परिपूर्ण होगा।

4. विश्वकर्मा—सौर-मण्डल के एक लघुकाय ग्रह 'बुध' की संरचना में सूर्य की यही (विश्वकर्मा) रश्मियाँ प्रमुख कारक रही हैं। यह रश्मियाँ प्राणी के बौद्धिक-धरातल का स्पर्श करके उसे शान्त और सन्तुलित बनाती

हैं। इस प्रकार बुध में निहित ये सूर्य-रश्मियाँ, बुध से निकल कर प्राणियों का स्पर्श करती हैं। इन शान्तिदायी रश्मियों का स्पर्श व्यक्ति की, जीव-जगत् की, मानसिक अस्थिरता, तनाव, उद्विग्नता, विचलन और भ्रम को दूर करके बौद्धिक और वैचारिक-धरातल को निरुद्वेग, शान्त, स्थिर और सुखद बनाती हैं।

5. उदावसु—बृहस्पति ग्रह की संरचना करने वाली ये सूर्य-रश्मियाँ वहाँ से (बृहस्पति-ग्रह से) निकल कर प्राणि-जगत के जीवन-क्रम, घटना-चक्र और उत्थान-पतन का नियन्त्रण करती हैं। मानव-जीवन में आने वाले संघर्ष के क्षणों में ये रश्मियाँ बड़ी सहायक और व्याधि-नाशक सिद्ध होती हैं।

6. विश्व व्यचा—शुक्र और शनि-ग्रहों की संरचना करने वाली ये सूर्य-रश्मियाँ प्राणि जगत् के लिए जीवन और मृत्यु की नियन्त्रक होती है। सूर्य से निकली हुई इन रश्मियों की प्रभावशीलता, जहाँ शुक्र-ग्रह में प्राणियों शुक्र (वीर्य) का पोषण-सम्बर्धन करती है, वहीं शनि-ग्रह, जो मृत्यु का अधिष्ठाता है, की मृत्युकारी-शक्ति का पोषण करती हैं। शुक्र-ग्रह से निकली हुई यह रश्मियाँ व्यक्ति के वीर्य, पराक्रम, काम-शक्ति, प्रणय, दाम्पत्य-जीवन को प्रभावित करती हैं। शनि से निसृत होने पर ये व्यक्ति के लिए मृत्यु की सन्देश वाहिका बन जाती हैं। शनि की अनुकूलता में इन रश्मियों से लाभान्वित होकर दीर्घायु प्राप्त करता है, परन्तु विपरीत स्थिति में इनका प्रभाव मारक हो जाता है और व्यक्ति दारुण मृत्यु का, असामयिक मृत्यु का ग्रास बनता है। इस प्रकार शुक्र द्वारा ये जीवनदायिनी होती है और शनि के माध्यम से मृत्युकारक बन जाती हैं।

7. हरिकेश—आकाश (ब्रह्माण्ड) में स्थित समस्त नक्षत्रों की उत्पत्ति, इसी 'हरिकेश' नामक सूर्य-रश्मि से हुई है। प्रत्येक नक्षत्र का अपना भिन्न प्रभाव है। यह प्रभाव समस्त जीव-जगत् को जीवनी-शक्ति, बल, ओज-तेज प्रदान करता है। व्यक्ति के द्वारा होने वाले समस्त शुभा-शुभ कार्यों की प्रेरणा में यह रश्मि विशेष रूप से सक्रिय रहती है। नक्षत्रों में अपना जो भी तेज और प्रभाव है, सब इसी रश्मि की देन है। जब हम कहीं पढ़ते या सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति नक्षत्र का बली है, अथवा वह व्यक्ति नक्षत्र का मारा है, उस समय यही सत्य उद्घाटित होता है कि वह नक्षत्र 'हरिकेश' रश्मियों से जिस रूप में प्रभावित है, उसी रूप में अपने से सम्बन्धित प्राणी (मनुष्य) को प्रभावित कर रहा है।

सारांश यह है कि सूर्य की रश्मियाँ अद्‌भुत और अकल्पित प्रभाव-क्षमता से सम्पन्न हैं। हम अपने दैनिक-जीवन में, समाज में जो भी दृश्य देखते हैं, प्रत्येक व्यक्ति ग्रहों से, अर्थात् ग्रह-नक्षत्रों के माध्यम से सूर्य की इन्हीं रश्मियों द्वारा नियन्त्रित रहता है। ग्रहीय-स्थिति के अनुसार इन रश्मियों का प्रभाव मनुष्य के लिए, सुखद अथवा पीड़ा-दायक बन जाता है।

सूर्योपासना में मूल उद्‌देश्य यही रहता है कि सूर्य की रश्मियों, प्रकाश, तेज और ऊष्मा के दुष्प्रभाव से मुक्ति मिलकर, जीवन में सुख-शान्ति की प्राप्ति हो।

4 | ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार

ब्रह्माण्ड

ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में विद्वज्जनों की आपत्तियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। प्राचीन भारतीय मनीषियों, पुराणकारों और विदेशी भौतिक-विज्ञानियों—खगोल-शास्त्रियों की धारणाओं में बड़ा अन्तर है। पारिभाषिक दृष्टि से उनकी शब्दावली कहीं अस्पष्ट है, कहीं बोझिल है, कहीं दुरूह और कहीं-कहीं एक दूसरे की मान्यता के सर्वथा विपरीत है। फिर भी इस केन्द्र पर आकर दोनों वर्ग एकमत हो जाते हैं कि धरती से आकाश तक (हमारे दृष्टि-जगत् के आगे भी बहुत दूर तक) का समस्त क्षेत्र 'ब्रह्माण्ड' है।

परिभाषा

'ब्रह्माण्ड' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—भूतल से लेकर अनन्त आकाश (अन्तरिक्ष) तक का वह सारा क्षेत्र, जो हमें दृष्टिगोचर होता है, तथा उसके आगे का वह क्षेत्र भी, जो अस्तित्व में होने पर भी, दूरी के कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, 'ब्रह्माण्ड' कहलाता है।

पृथ्वी के चतुर्दिक व्याप्त वह महाशून्य, जिसमें यह भूमण्डल, आकाश के असंख्य तारागण, नवग्रह, उपग्रह, राशियों और नक्षत्रों के समूह आदि स्थित हैं—'ब्रह्माण्ड' है। इसी को 'विश्व' अथवा 'विश्वब्रह्माण्ड' भी कहते हैं।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि पृथ्वीतल के ऊपर चतुर्दिक स्थित वायुमण्डल और वह क्षेत्र, जहाँ तक पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति सक्रिय रहती है, 'विश्व' है।

यद्यपि थोड़े अन्तर से इसी परिभाषा को अन्य विद्वानों ने भी स्वीकृत किया है, तथापि उनकी मत-भिन्नता और मतैक्य, सबका सारांश यह निकलता है कि जैसे पृथ्वी, विश्व का एक भाग है, ठीक उसी प्रकार विश्व, ब्रह्माण्ड का एक खण्ड है। आशय यह है कि ब्रह्माण्ड का क्षेत्र सर्वा-

धिक विस्तृत है। विश्व उसका एक भाग है और पृथ्वी, उसी विश्व का एक क्षेत्र है।

सौर-परिवार

यद्यपि हम आकाश को महाशून्य कहते हैं, परन्तु वास्तव में वह शून्य नहीं है। उसका कोई भी कोना अथवा क्षेत्र सर्वथा रिक्त (शून्य) नहीं है। सर्वत्र कुछ न कुछ तारों का अस्तित्व अवश्य है, जो उसकी शून्यता को समाप्त कर देते हैं। समस्त आकाशमण्डल तारों से आच्छादित है। रात के घने अंधेरे में, जब कि बादल न हों, हम यह आकाशीय-वैभव प्रायः नित्य देखते रहते हैं। उन अगणित छोटे-बड़े तारों को विभिन्न नाम, समूहों में विभक्त करके खगोलविदों ने अपने गहन अनुसन्धान ओर दीर्घ-कालीन शोध के पश्चात् कितने ही रहस्यमय, रोचक और रोमाञ्चक तथ्यों का उद्घाटन किया है। यह बात अलग है कि खगोल-शास्त्रियों की मान्यताएं और उनके सप्रमाण निष्कर्ष, पौराणिक मान्यताओं से मेल नहीं खाते, तो भी प्रत्यक्ष को नकारा नहीं जा सकता! जहाँ पौराणिक-तथ्य हमारी श्रद्धा का पोषण करते हैं, वहीं भौतिक-निष्कर्ष दृश्य-जगत् के यथार्थ का अनुभव कराते हैं।

आकाश-मापन एक असम्भव कार्य है। कोई भी विद्वान् अथवा यन्त्र आज तक आकाश-क्षेत्र का सही विस्तार, उसकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं बता सका। गणितीय-सुविधा के लिए उसे लाखों मील का विस्तृत-क्षेत्र मान लिया गया है, परन्तु यह विस्तार भी वास्तव में कल्पना ही है। यथार्थ में इससे बहुत अधिक होगा। अस्तु, विवेचना को सुविधाजनक बनाने के लिए विश्व के (हम यहाँ मुख्य रूप से भारतीय-विद्वानों की चर्चा कर रहे हैं) खगोल-शास्त्रियों ने लाखों मील के दायरे में फैले आकाशीय-क्षेत्र के तारा-मण्डल को सत्ताईस प्रमुख समूहों में विभक्त किया है। प्रत्येक समूह को 'नक्षत्र' की संज्ञा दी गयी है। प्रत्येक नक्षत्र (तारा-समूह) की अपनी एक विशिष्टता है, जो दूसरे से पर्याप्त भिन्नता रखती है। विद्वानों ने उन सभी सत्ताईस नक्षत्रों में से प्रत्येक का अलग-अलग विस्तृत विवेचन किया है। उनके विवेचन से प्रत्येक नक्षत्र की आकृति, रूपाकार, क्षेत्र, दूरी, प्रकाश, विकिरणीय प्रभाव, गति और स्थिति काल की जानकारी सर्वसुलभ हो गयी है।

यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि ब्रह्माण्ड के इन रहस्यों, तारा-समूहों, नक्षत्रों की गवेषणा किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं की गयी, इस अनुसन्धान में पीढ़ियों का समय-श्रम लगा है। फिर भी यह नहीं कहा

जा सकता कि वे सारे निर्णय-निष्कर्ष अपने में पूर्ण और अन्तिम हैं। ज्ञान की खोज सदैव होती रही है और होती रहेगी! यद्यपि ब्रह्माण्ड के विषय में पर्याप्त प्रामाणिक तथ्य प्राप्त होते हैं, तथापि विद्वानों-वैज्ञानिकों को कुछ ओर नये रहस्य उद्घाटित करने की लालसा, निरन्तर प्रेरणा देकर सक्रिय बनाये रहती है। वे सदैव इस विषय पर अनुसन्धान, शोध और प्रयोग करते रहते हैं। आवश्यकता ही अनेक प्रकार के आविष्कारों को जन्म देती है। शोधरत वैज्ञानिकों ने भी ब्रह्माण्ड की छानबीन करने के लिए अनेक प्रकार के सहायक यन्त्र बनाये हैं, जो दूरी, कम्पन, ध्वनि, प्रकाश, गति और विकिरणीय-प्रभाव के विषय में पर्याप्त संकेत देते हैं।

नक्षत्र-समूह

अनन्त तारा-समूहों को सत्ताईस नक्षत्रों के क्षेत्रों में सीमाबद्ध करके, विद्वानों ने उनकी गवेषणा और अध्ययन में पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने प्रत्येक समूह का नामकरण किया था, ताकि विवेचना में कोई भ्रान्ति न हो। उनके द्वारा निर्धारित वे सत्ताईस तारासमूह (नक्षत्र) इस प्रकार हैं :—

1. अश्विनी
2. भरणी
3. कृत्तिका
4. रोहिणी
5. मृगशिरा
6. आर्द्रा
7. पुनर्वसु
8. पुष्य
9. आश्लेषा
10. मघा
11. पूर्वाफाल्गुनी
12. उनराफाल्गुनी
13. हस्त
14. चित्रा
15. स्वाती
16. विशाखा
17. अनुराधा
18. ज्येष्ठा
19. मूल
20. पूर्वाषाढ़ा
21. उत्तराषाढ़ा
22. श्रवण
23. धनिष्ठा
24. शतभिषा
25. पूर्वाभाद्रपद
26. उत्तराभाद्रपद
27. रेवती

कुछ लोग एक अन्य नक्षत्र 'अभिजित्' को 28वाँ नक्षत्र मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान् इसे 'उत्ताराषाढ़ा' और 'श्रवण' में ही समाहित मानते हैं। अतः सामान्य रूप में केवल 27 नक्षत्र ही गिने जाते हैं। ये 27 नक्षत्र वही 27 तारा-समूह हैं, जिन्हें खगोल-शास्त्रियों ने परिकल्पित किया है।

राशि-समूह

जिस प्रकार अनन्त तारामण्डल को 27 समूहों में विभक्त करके नक्षत्रों की परिकल्पना की गयी थी. ठीक उसी प्रकार नक्षत्रों को समूहबद्ध करके राशियों के रूप में विभाजित किया गया। राशियों की संख्या 12 है। अर्थात् 12 राशियों के समूह में समस्त 27 नक्षत्रों का समूह समाहित है। इस प्रकार प्रत्येक राशि दो नक्षत्रों (आंशिक रूप में तीसरे से भी) से सम्बद्ध है। ज्योतिषी-जन किसी भी प्रश्न के समाधान में 'राशि' को प्रमुख आधार बनाते हैं। मानव-जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में राशिगत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वैसे नक्षत्र, वार, तिथि और मास-पक्ष का प्रभाव भी रहता है। अस्तु, बारह राशियों की नामावली निम्नलिखित है :—

1. मेष
2. वृष
3. मिथुन
4. कर्क
5. सिंह
6. कन्या
7. तुला
8. वृश्चिक
9. धनु
10. मकर
11. कुम्भ
12. मीन

ग्रह समूह

आकाश में सात प्रमुख ग्रह (विशालकाय तारे) हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार है :—

1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. मङ्गल. 4. बुध, 5. बृहस्पति, 6. शुक्र, 7. शनि। इनके अतिरिक्त दो ग्रह और भी माने जाते हैं—1. राहु और 2. केतु। परन्तु ये साकार और दृश्यमान न होकर, छाया मात्र हैं, अतः इन्हें काल्पनिक कहकर, भौतिक-विज्ञानी और खगोल-शास्त्री, स्वीकार नहीं करते। उन्होंने अपने अनुसन्धान से तीन नये ग्रहों का पता लगाया है- यूरेन्स, नेपच्यून और प्लूटो।

आकाश में इन विकालकाय तारों (ग्रहों) की स्थिति, पृथ्वी से दूरी, अन्य ताराओं से पारस्परिक दूरी और उनकी रश्मियों का परावर्त्तन- ये सारे तथ्य पृथ्वीतल को (भूलोक को) प्रतिक्षण प्रभावित करते रहते हैं। ऋतु-परिवर्त्तन, वातावरण में प्रभावान्तर, सृष्टि के जीव-जन्तुओं की प्रकृति, प्रवृत्ति, रुचि, स्वभाव, जीवनी-शक्ति और पृथ्वी के बाह्य-परिवेश में विपर्यय—इन सबका मूल कारण ग्रहों की स्थिति, उनकी गतिशीलता, पारस्परिक-युति और पृथ्वी से दूरी होती है।

इस प्रकार समस्त नक्षत्र-समूह, राशि-समूह और ग्रह-समूह मिलकर सौर-मण्डल की रचना करते हैं।

ब्रह्माण्ड-स्थित समस्त ताराओं में सबसे विशालकाय ग्रह 'सूर्य' है। अपनी विशालता और अत्यधिक तेज, प्रभाव के कारण वह 'ग्रहराज' कहा जाता है। उससे सम्बद्ध उपरोक्त सभी ग्रह 'सौर-परिवार' के सदस्य माने जाते हैं। पृथ्वी भी सौर-परिवार के एक सदस्य रूप में स्वीकृत है। वैसे तो सभी छोटे-बड़े तारे, राशि, नक्षत्रादि सबके सब सौर-परिवार के अङ्ग हैं। परन्तु व्यावहारिक रूप में मुख्यतः ग्रहों की ही गणना होती है। सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि 'सौर-परिवार' का अर्थ है—सूर्य और उससे सम्बन्धित आठों ग्रहों (चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु) का समूह।

सूर्य की भाँति आकाश में अगणित तारे हैं—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े। कोई पृथ्वी के निकट हैं और कोई इतनी दूर कि दूरबीन से भी नहीं देखे जा सकते। उन सबकी किरणें पृथ्वीतल का स्पर्श करती रहती हैं और उस स्पर्श की प्रतिक्रिया भी होती रहती है। भले ही वह प्रतिक्रिया हमारे अनुभव में न आये, परन्तु होती अवश्य है। जो भी तारा पृथ्वीतल से देखा जा सकता है, उसकी किरणें भूमण्डल का स्पर्श अवश्य करती हैं—भले ही उनका प्रकाश-प्रभाव क्षीणतम रहता हो।

समस्त ग्रह अपनी-अपनी प्रकाश-किरणें उत्सर्जित करते हैं। प्रत्येक ग्रह की किरणें एक भिन्न वर्ण (रङ्ग) की होती हैं। उसका रश्मिपुञ्ज अपने तापमान के आधार पर एक पृथक् प्रभाव उत्पन्न करता है। यथा—

● **सूर्य**– सर्वाधिक ज्वलन्त ग्रह है। इसकी रश्मियाँ अत्यधिक ताप विकरित करती हैं।

● **चन्द्रमा**—चन्द्रमा की किरणें अद्‌भुत शीतलता प्रदान करती हैं। इसकी अनुभूति कभी भी चाँदनी में बैठकर की जा सकती है।

● **मङ्गल**—मङ्गल की किरणों में भी ताप होता है। उनका स्पर्श प्राणी में उग्रता, उत्तेजना और दुःसाहस उत्पन्न करता है।

● **बुध**—बुध की किरणें सौम्य होती हैं, अतः आपराधिक प्रेरणा का शमन करके, बुद्धि-विवेक का पोषण करती हैं।

● **बृहस्पति**—मस्तिष्क को स्पर्श करके उसे जगाने, सक्रिय करने, ज्ञान-तन्तुओं को सशक्त बनाने में गुरु की किरणें सर्वाधिक प्रभावी होती हैं।

● **शुक्र**—शुक्र की नीलाभ किरणें राजसिक गुणों और वैभव-विलास

की भावना जगाती हैं। मस्तिष्क को कलात्मक-प्रेरणा देने में शुक्र-रश्मियाँ सर्वाधिक सक्षम होती हैं।

● **शनि**—शनि की किरणें व्यक्ति को उदासीन, पीड़ित और कुण्ठा-ग्रस्त बनाती हैं।

● **राहु-केतु**—राहु-केतु की किरणें, समीपस्थ ग्रह की किरणों से मिलकर तदनुसार प्रतिक्रिया करती हैं।

यद्यपि हम आकाश में असंख्य तारे देखते हैं। छोटे होने के कारण (दूरी भी एक प्रमुख कारण है), वे पृथ्वीतल पर अपनी विशेष प्रति-क्रियात्मक किरणें नहीं डाल पाते, फिर भी उनका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। जहाँ तक नवग्रहों की बात है, ये सौर-मण्डल के प्रमुख सदस्य हैं। आकार में विशालतम होने के कारण इनकी किरणें अखिल सृष्टि को उत्प्रेरित करती रहती हैं। पृथ्वीतल के समस्त प्राणी (जीव-जन्तु और वनस्पति भी) उनसे प्रभावित होते है। आँधी, पानी, पतझड़, सूखा, अति वृष्टि, भूकम्प, जाड़ा, गर्मी, महामारी, उल्कापात, तूफान तथा अन्य प्राकृतिक-परिवर्त्तन-प्रकोप इन्हीं ग्रहों की गतिशीलता और अवस्थिति से उत्पन्न होते हैं।

मानव ही नहीं, समस्त जीव-जगत् की शारीरिक-संरचना, मनो-वृत्तियाँ, चेतना और कार्य-क्षमता इन ग्रहों की रश्मियों से प्रभावित, संचालित होती रहती हैं।

एक वाक्य में कहा जा सकता है कि—"सौर-परिवार ही सृष्टि का नियामक है।"

5 ज्योतिष-शास्त्र में सूर्य की महत्ता

ज्योतिष-विद्या

ज्योतिष-शास्त्र वस्तुतः ज्योति अर्थात् प्रकाश का शास्त्र है। भाव यह है कि ब्रह्माण्ड में अवस्थित विभिन्न ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं और राशि-समूहों से जो प्रकाश किरणें विकरित होती हैं,उनकी स्थिति, प्रभावशीलता, दूरी, अवधि आदि का विवेचन करने वाला शास्त्र। कारण कि अखिल विश्व में सृष्टि और संहार, परिवर्तन और विवर्तन सबके मूल में वही प्रकाश किरणें ही प्रमुख कारक होती हैं।

एक मान्यता यह भी है कि ज्योतिष-शास्त्र समय (कालगति) का परिचायक विषय है। अर्थात् वह विद्या, जो समय—पल, क्षण से लेकर मास, वर्ष और शताब्दि तक—का विवेचन,उसके भूत,वर्त्तमान और भविष्य की स्थिति, सम्भावना पर प्रकाश डाले।

गहराई से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि समय की गति वास्तव में उन्हीं ग्रहों-नक्षत्रों की गति की प्रतिक्रिया हैं। कोई ग्रह कितने समय में कितना (कहाँ तक) चलता है और उस समय उसकी प्रकाश-किरणें कैसी होती हैं,वे सृष्टि पर क्या प्रभाव डालती हैं, यही सब ज्योतिष द्वारा ज्ञात किया जाता है। संक्षेप में यह परिभाषा दी सकती है कि ज्योतिष-विद्या ग्रहों-नक्षत्रों की अवस्थिति, गति प्रभाव की परिचायिका है।

ब्रह्माण्ड और ग्रह

समस्त आकाशमण्डल में, विश्व-ब्रह्माण्ड में, सूर्य को सर्वाधिक विशाल, ज्वलन्त, तेजोमय, शक्ति-सम्पन्न और प्रभावशाली ग्रह माना जाता है। अन्य सभी ग्रह इसके अधीन हैं। वे इसकी शक्ति से प्रभावित हैं। यही कारण है कि लगभग सभी छोटे-बड़े ग्रह (तारे और उपग्रह भी) सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। उसकी आकर्षण-शक्ति से बँधे होने के कारण वे सदैव एक निश्चित कक्षा में, नियन्त्रित गति से भ्रमण करते रहते हैं।

ब्रह्माण्ड के (आकाशमण्डल में स्थित) समस्त ताराओं में [illegible]

ग्रहों को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है—1. सूर्य, 2. चन्द्र, 3. मङ्गल, 4. बुध. 5. गुरु, 6. शुक्र, 7. शनि। इनके अतिरिक्त दो छाया-ग्रह और भी माने जाते हैं--यद्यपि वे दृश्य न होकर. अदृश्य हैं—राहु और केतु। इस प्रकार भारतीय-ज्योतिष में कुल नौ ग्रहों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। ये सभी ग्रह समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं और सूर्य इन सबका प्रतिनिधि-ग्रह है। इसी कारण उसे 'ग्रहराज' की संज्ञा दी गयी। इन ग्रहों और इनके अधीन समस्त राशि-नक्षत्र समूहों का नियन्त्रण सूर्य के द्वारा होता है, अतः समस्त आकाश और ब्रह्माण्ड को, जहाँ तक इन नवग्रहों का प्रभाव-क्षेत्र है, 'सौर-मण्डल' कहा जाता है। सम्पूर्ण सौर-मण्डल के प्रतिनिधि अथवा नियन्त्रण-कर्त्ता सूर्यदेव हैं।

समय अर्थात् काल को यदि एक मनुष्य के आकार में मान लिया जाय, तो उसके शिरोभाग पर सूर्य का नियन्त्रण होगा। शिर—शरीर का सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण अङ्ग है। वाणी, श्रवण, दृष्टि, विचार, मेधा आदि के अङ्ग इसी भाग में स्थित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि समय का प्रारम्भि भाग, जो अनेक विशेषताओं से पूर्ण रहता है, सूर्य द्वारा ही नियन्त्रित होता है।

समस्त नक्षत्र लोक (ब्रह्माण्ड) बारह प्रमुख तारा समूहों में विभक्त हैं। उन्हें राशि कहते हैं। प्रत्येक राशि का एक भिन्न नाम है। हरएक राशि में 2-3 नक्षत्र होते हैं। ये नक्षत्र भी तारा-समूह हैं। सूर्य सदैव किसी न किसी राशि-क्षेत्र में रहता है। एक राशि पर एक मास तक रहने से, सूर्य को पूरे राशि-चक्र का भ्रमण करने में 1 वर्ष लग जाता है। प्रत्येक मास, अपनी राशि के सूर्य-आधार पर, 'सौर-मास' कहा जाता है। ज्योतिष-शास्त्र में इस विषय की विस्तार से विवेचना की जाती है कि किस समय कौन-सा ग्रह किस राशि पर है, अन्य ग्रहों की तथा नक्षत्रों की उस समय क्या स्थिति है, और उनका पारस्परिक विकिरणीय प्रभाव कैसी प्रतिक्रिया करता है। प्रत्येक राशि और ग्रह की प्रभाव-परिणति और स्थिति में पर्याप्त भिन्नता होती है। जब कभी दो या अधिक ग्रहों की प्रभावशीलता समान हो जाये, तो उनका प्रभाव बढ़ जाता है। ग्रहों का प्रभाव कितना प्रबल होता है, देखें—

> ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति, ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
> ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं, जगदेतच्चराचरम्॥

जहाँ तक सूर्यग्रह का सम्बन्ध है, इसे कालपुरुष के मस्तक (शिरोभाग) का 'नियन्त्रणकर्त्ता' कहा गया है। ज्योतिषी-जन व्यक्ति की जन्म-कुण्डली (जन्म के समय ब्रह्माण्ड में ग्रहों-राशियों की अवस्थिति का मान-

चित्र) देखकर (यदि वह किसी विद्वान् द्वारा बनायी गयी हो) समझ जाते हैं कि इस व्यक्ति का जीवन-क्रम कब, कैसा होगा। यद्यपि यह विषय बहुत ही जटिल, समय साध्य, श्रमसाध्य और दुर्बोध है, फिर भी जो लोग इसमें पारङ्गत हो जाते हैं, वे संसार का भूत-भविष्य प्रतिक्षण देखते समझते रहते हैं।

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, दीर्घकालीन शोध के पश्चात् मनीषियों के निर्णय से, माना जाता है कि सूर्यदेव सृष्टि (जीव-जगत् मुख्यतः मानव) के पित्त-तत्व (रक्त) पर नियन्त्रण रखते हैं। ये पुरुष-ग्रह हैं, पूर्व दिशा के स्वामी हैं, क्षत्रिय वर्ण के. और अग्नितत्व-प्रधान (परम तेजस्वी और दाहक), तांबे के रङ्ग वाले. क्रूर, कठोर, उग्र और प्रखर ग्रह हैं। इन्हें सिंह राशि का (सिंह-राशि के क्षेत्र वाले तारा-समूहों,नक्षत्रों और आकाश-मण्डल का) स्वामित्व प्राप्त है। इनके लिए मेष-राशि श्रेष्ठ और तुला राशि निम्न (प्रतिकूल) है। नवग्रहों में चन्द्रमा, मङ्गल और गुरु से सूर्य की मित्रता (अनुकूलता) है, बुध समानधर्मा है, परन्तु शुक्र और शनि के साथ सूर्य का विपरीत प्रभाव चलता रहता है।

जन्माङ्ग चक्र में भाव

किसी भी व्यक्ति, प्राणी, वस्तु अथवा स्थान की जन्म-कुण्डली (जन्माङ्ग-चक्र) में बारह भाव (घर/खाने) होते हैं। प्रत्येक भाव में 1 से लेकर 12 तक की कोई न कोई संख्या होती हैं। यह संख्या अपने क्रम से सम्बन्धित राशि की सूचना देती है। 1. मेष, 2. वृष, 3 मिथुन, 4. कर्क, 5. सिंह, 6. कन्या, 7. तुला, 8. वृश्चिक, 9. धनु, 10. मकर, 11. कुम्भ, 12. मीन। प्रत्येक भाव जीवन के एक विशेष क्षेत्र का परिचायक होता है। नीचे प्रत्येक भाव और उससे सम्बन्धित विषय-क्षेत्र का परिचय दिया जा रहा है :—

भाव (खाना) संख्या	सम्बन्धित विषय-क्षेत्र
1.	तन, शरीर, जीवन, आयु
2.	धन, द्रव्य, सम्पदा
3.	सामान्य सुख. सहज सरल जीवन
4.	सुख, शान्ति, मित्रता
5.	पुत्र
6.	शत्रु
7.	पत्नी
८.	मृत्यु

9. धर्म
10. कर्म, क्रियाशीलता
11. आय (आमदनी-उपार्जन)
12. व्यय

प्रत्येक भाव में कोई न कोई राशि (संख्या) अवश्य रहती है। इसके अतिरिक्त किसी-किसी भाव में एक या एकाधिक ग्रह भी उपस्थित रहते है। किस भाव में कौन-सी राशि है, कौन-सा ग्रह है और उसके आस-पास वाले ग्रहों की किसी भाव में कैसी स्थिति है—यह सब देखकर विद्व-ज्जन शास्त्रीय-सूत्रों के आधार पर उस व्यक्ति के विषय में विस्मयजनक भविष्य-वाणी कर देते हैं कि इसे कब क्या झेलना पड़ेगा।

यहाँ हमारा विवेच्य-विषय केवल सूर्य की स्थिति है, अतः अन्य ग्रहों को न लेकर, केवल सूर्य के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख ज्ञातव्य तथ्यों का सारांश प्रस्तुत करेंगे।

सर्वप्रथम प्रत्येक भाव में सूर्य की अवस्थिति की पृथक्-पृथक प्रति-क्रिया (प्रभाव) समझना उपयोगी होगा।

प्रथम भाव

इसे 'लग्न-भाव' भी कहते हैं। भले ही इसमें किसी भी राशि की संख्या पड़ी हो, अर्थात् कोई भी राशि विराजमान हो (यद्यपि उसका भी प्रभाव पड़ेगा, तथापि), उसमें सूर्य की उपस्थिति अपना विशेष प्रभाव दर्शाती है। अब यह बात अलग है कि उस (प्रथम) भाव में सूर्य के साथ कौन-सी राशि है। वह राशि सूर्य के प्रभाव को घटा-बढ़ा भी सकती है। अनुकूलता की स्थिति सूर्य के प्रभाव की वृद्धि करेगी और प्रतिकूल स्थिति में सूर्य का प्रभाव क्षीण या विपरीत हो जायेगा।

यदि कुण्डली के प्रथम (लग्न) भाव में सूर्यदेव विराजमान हैं, तो यह निश्चित है कि वह व्यक्ति लम्बे कद वाला, स्वभाव से रूखा, क्रोधी, उत्तेजित मनःस्थिति वाला, वात-पित्त-कफ से थोड़े में ही ग्रस्त हो जाने वाला होगा। बचपन में ऐसे बालक पीड़ा झेलते हैं तथा नेत्र-कष्ट भी सहते हैं। किन्तु इसके साथ ही, प्रथमभाव (लग्नभाव) में विराजमान सूर्य का प्रभाव व्यक्ति को उदार, साहसी, आत्माभिमानी, बुद्धिमान और धैर्य-वान् बनाता है। किन्तु क्रोधावेश में ऐसे लोग कभी-कभी संयम के विपरीत आचरण करने लगते हैं। कभी-कभी सिर में आघात, रोग-विकार की भी स्थिति आ जाती है। परन्तु अनिष्टकर प्रभाव तभी होता है, जब लग्न-भाव में सूर्य के साथ कोई दुष्ट या शत्रु-ग्रह बैठा हो, अथवा कहीं से भी

उन पर प्रभाव डाल रहा हो। प्रथम भाव में सूर्य के साथ मेष-लग्न का संयोग, व्यक्ति को नेत्र-विकारों से ग्रस्त करता है। ऐसे लोग धनी अवश्य होते हैं। शुभग्रह का संयोग उसे विद्वान् भी बनाता है। लग्न-भाव में सूर्य के साथ तुला-राशि हो अर्थात् तुला-लग्न में सूर्य की स्थिति हो, तो भी नेत्र-रोग की आशङ्का रहती है। ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ—'चमत्कार चिन्तामणि' में प्रथम भावस्थ सूर्य के लिए कहा गया है :—

तनुस्थो रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते ,
मनः सन्तपेद्दारदायदवर्गात् ।
वपुः पीड्यते वात पित्तेन नित्यं ,
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धि प्रयाति ॥

इसी प्रकार 'जातकाभरण' ग्रन्थ कहता है—

लग्नेऽर्के कचः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोन्नतः ।
कामी लोचन रुक्सु कर्कश तनुः शूरः क्षमो निर्घृणः ॥

द्वितीय भाव

जन्माङ्ग-चक्र के द्वितीय भाव में सूर्य की उपस्थिति पूर्वोक्त से भिन्न प्रभाव डालती है। यदि द्वितीय भाव में सूर्य के साथ सिंह राशि (5वीं संख्या) बैठी हो, तो धन-लाभ की पूर्ण सम्भावना बनती है। किन्तु यदि वहाँ तुला राशि (7वीं संख्या) हो तो यह स्थिति भयङ्कर रूप में धन-हानि का कारण बनती है। सामान्यतः द्वितीय भाव में सिंह-राशि के अतिरिक्त अन्य कोई भी राशि सूर्य के साथ बैठकर शुभफल नहीं देती, वह धन का क्षय ही करती हैं। यदि अन्य ग्रह और राशियों की स्थिति शुभ हो तो द्वितीय भाव के सूर्य धन, परिवार, पशु सब कुछ देते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों की धारणा है कि ऐसी स्थिति में सूर्य का प्रभाव भौतिक-समृद्धि तो देता है, किन्तु जातक को वाहन-सुख से वंचित रखता है।

'चमत्कार चिन्तामणि' की उक्ति है :—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्यात् ,
चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति ।
कुटुम्बे कलिर्जायया जायतेऽपि ,
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतो ॥

तृतीय भाव

तृतीय भाव में सूर्य की उपस्थिति जातक (सम्बन्धित व्यक्ति) को पराक्रमी बनाती है। यदि तृतीय भाव में सूर्य के साथ कुम्भ राशि (11 की

संख्या) विराजमान हो, तो भी व्यक्ति भाग्यशाली होता है। सामान्यतया इस भाव (तृतीय भाव,सहज भाव) में बैठे सूर्य से जातक को सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त रहती हैं। इसे एक शुभ स्थिति माना गया है।

जातक के लिए 'जातकाभरण' ग्रन्थ में लिखा है—

प्रियंवदः स्यात् धन वाहनाढ्यः,
सुकर्म चित्तोऽनुचरान्वितश्च।
मितानुजः स्यान्मनुजो बलीयान्,
दिनाधिनाथे सहजेऽधि संस्थे॥

चतुर्थ भाव

जन्माङ्ग-चक्र के चतुर्थ भाव से जातक के मित्रों द्वारा सुख-शान्तिमय जीवन का आभास मिलता है। यदि इस भाव में सूर्यग्रह की उपस्थिति हो तो यह योग अशुभ माना जाता है। चतुर्थ भाव में सूर्य को, सुख-बाधक कहा गया है। यदि साथ में तुलाराशि भी हो, तो वह जातक सदैव इधर-उधर भटकता रहता है। यदि नौकरी में हुआ तो कहीं स्थायी रूप से न रहकर बराबर स्थानान्तरित होता रहता है। हाँ, यदि चतुर्थ भाव में सिंह राशि भी बैठी हो और सूर्य भी हो तो यह स्थिति शुभ, सुखद और जातक के लिए अचल सम्पत्ति का लाभ देने वाली होती है। ऐसे जातक मातृ-पक्ष से भी लाभ उठाते हैं, किन्तु मैत्री पक्ष के लिए अर्थात् मित्रवर्ग के बीच ऐसे जातक सौभाग्यशाली नहीं होते, जिनके चतुर्थ भाव में सूर्य बैठे हों, कारण कि यह स्थिति मैत्री-भङ्ग का प्रमुख कारण बनती है। इस विषय में 'चमत्कार चिन्तामणि' का कथन दृष्टव्य है—

तुरीये दिनेशेऽतिशोभाधिकारी,
जनः संल्लभेत् विग्रहं बन्धुतोऽपि।
प्रवासो विपक्षाहवे मानभंगं,
कदाचिन्न शान्तं भवेत्तस्यः चेतः॥

पञ्चम भाव

यद्यपि पञ्चम भाव में सूर्य की उपस्थिति व्यक्ति को बुद्धिमान्, दूरदर्शी और सजग बनाती है, परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से इसे 'दोष' कहा गया है। पञ्चम भाब में सूर्य को उदर-विकारकारक और सन्तान के लिए कष्टप्रद माना जाता है। धनी होने के बावजूद ऐसे जातक प्रायः हृदय-रोग से आक्रान्त होकर मरते हैं। यथा—

रुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी,
कुशाग्रा मतिः भास्करे मन्त्रविद्या।
रतिर्वञ्चनो संचकोऽपि प्रमादी,
मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया॥

षष्ठ भाव

षष्ठ भाव व्यक्ति के विरोधियों का सूचक होता है। इसे शत्रु-भाव भी कहते हैं। यहाँ बैठे सूर्य शत्रुनाशक और जीविकादायक माने जाते हैं। यह एक शुभ स्थिति होती हैं। शत्रुञ्जय सूर्य के विषय में कहा गया है—

शाश्वत् सौख्येनान्वितः शत्रुहन्ता,
सत्त्वोपेतश्चारु यानो महौजाः।
पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः,
शत्रुक्षेत्रे मित्र संस्था यदि स्यात्॥

सप्तम भाव

सप्तम भाव में बैठे हुए सूर्य दुःखदायी होते हैं। यह स्थिति व्यक्ति को अनेक प्रकार से पीड़ित करती है। स्त्री-क्लेश (पत्नी के स्वभाव अथवा स्वास्थ्य के कारण सन्ताप), शारीरिक-कष्ट (रोग-विकार, चोट-चपेट) और दुर्जनों का दुर्व्यवहार. यह सब उस जातक को निरन्तर व्यथित करते रहते हैं, जिसके जन्माङ्ग-चक्र में सप्तम भाव में सूर्य बैठे हों। ऐसा व्यक्ति अवश्य ही नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त, चिड़चिड़े स्वभाव वाला, अस्थिर चित्त और प्रायः असन्तुष्ट रहता है। स्त्रीजन्य क्लेश तो उसे भोगना ही पड़ता है :—

द्युनाथो यदा द्यूनजातो नरस्य,
प्रियातापनं पिण्डपीडा च चिन्ता।
भवेत् तुच्छ लब्धि क्रये विक्रयेऽपि,
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां कदाचित्॥

यहाँ यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि यदि किसी स्त्री के जन्माङ्ग-चक्र में, सूर्य सातवें भाव में बैठे हों तो वह अवश्य ही कुलटा, परपतिरता, व्यभिचारिणी और कामातुरा होती है।

अष्टम भाव

यह मृत्यु-सूचक भाव है। यहाँ अर्थात् अष्टम भाव में बैठे हुए सूर्य का प्रभाव दुःखद होता है। सूर्य की यह स्थिति जातक को नेत्र-व्याधि से

ग्रस्त करती है, साथ ही उसके धन और साहस (आत्मबल) का भी नाश होता है। ऐसे जातक कभी-कभी विदेशी-विजातीय महिला के कारण भी पीड़ित-प्रताड़ित होते हैं। मदिरा जैसे दुर्व्यसन भी अपना प्रभाव डालते हैं। सारांश यह कि अष्टम भाव के सूर्य अशुभ होते हैं।

नवम भाव

जन्माङ्ग-चक्र के नवम भाग में बैठे हुए सूर्य का प्रभाव शुभ और सुखद होता है। यदि वहाँ मेष अथवा सिंह राशि बैठी हो तो विशेष रूप से लाभकारी स्थिति बन जाती है। किन्तु तुला राशि के होने पर जातक को स्त्री-सम्बन्धी कष्ट भोगना पड़ता है। चूंकि नवम भाव धर्म (आध्यात्मिक चेतना) का सूचक है, अतः यहाँ बैठे हुए सूर्य, व्यक्ति को धर्माचरण की प्रेरणा देते हैं। ऐसा व्यक्ति बुद्धिमान, किन्तु हठी, (नास्तिक भी) हो सकता है। वैसे, इस प्रकार के लोग अपनी बौद्धिक-क्षमता से पर्याप्त यश अर्जित करते हैं। वे समाज में कुछ नया कार्य करके दिखाते हैं। परन्तु एक दुखद स्थिति भी आती है—नवम भाव में बैठे सूर्य के कारण जातक अपने परिवारी-जनों से खिन्न (कलह-पीड़ित) रहता है।

दशम भाव

दशवें भाव में बैठे सूर्य सुखदायक होते हैं। वे व्यक्ति को क्रियाशील. कर्मरत, परिश्रमी, उद्योगी और जागरूक बनाते हैं। पारिवारिक खिन्नता होने पर भी, ऐसे जातक धनाढ्य, द्रव्य-सञ्चयी तथा सोने, चाँदी, रत्नादि से सम्पन्न होते हैं। ऐसे लोग राज्याश्रय (सरकारी नौकरी या पुरस्कार आदि) पाते हैं। यदि सूर्य के साथ मेष राशि (संख्या 1) भी दशम भाव में उपस्थित हो तो व्यक्ति को राजसुख (राजा के समान) सम्भावित होता हैं। किन्तु तुलाराशि होने पर राजकोप, तथा पितृ-क्लेश सहना पड़ता है।

एकादश भाव

व्यक्ति की आय (आमदनी) बताने वाले इस ग्यारहवें भाव में बैठे सूर्य से राजकृपा से धन की उपलब्धि होती है। वाहन-सुख भी प्राप्त होता है। ऐसे लोग कलाकार, सङ्गीत-प्रेमी, ललित कला-प्रेमी, चपल, रसिक और धनी होते हैं। किन्तु पुत्रपक्ष के लिए ग्यारहवें भाव के सूर्य अशुभ रहते हैं। पुत्र के कारण संताप अथवा पुत्र को क्लेश की स्थिति आती रहती है। सामान्यतः एकादश भाव के सूर्य शुभ कहे जाते हैं—

गीतप्रीतिं चारुकर्म प्रवृत्ति ,
चञ्चत् कीर्ति वित्तपूर्त्ति नितान्तम् ।
भूपात् प्राप्ति नित्यमेव प्रकुर्यात् ,
प्राप्तिस्थाने भानुमान् मानवानाम् ।।

यदि किसी कन्या की कुण्डली में सूर्य ग्यारहवें भाव में बैठे हों तो वह शुभ होती है—

नृपप्रियाभवस्थेऽर्के सदा लाभ सुखान्विता ।
गुणज्ञा रूपशीलाढ्या धन पुत्र समन्विता ।।

व्दादश भाव

बारहवें भाव (व्यय भाव) में बैठे सूर्य जातक को नेत्र-कष्ट, यात्रा में हानि, कामातुरता, परन्तु यदा-कदा अर्थ-लाभ भी देते हैं। सारांश रूप में बारहवें भाव में सूर्य की उपस्थिति अशुभ ही मानी जाती है—

रविर्द्वादशे नेत्रदोष करोति ,
विपक्षाहवे जायतेऽसौ जयश्रीः ।
स्थितिर्लब्धया लीयते देह दुःखं ,
पितृव्यापदो हानिरध्व प्रदेशे ।।

सारांश

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन को सारांश रूप में इस प्रकार समझना चाहिए :—

प्रथम भाव—सूर्य यदि लग्न में पड़े हों तो बालक आकार में लम्बा कर्कश-स्वभाव एवं गर्म प्रकृति का होता है और प्रायः वात-पित्त-कफ से पीड़ित रहता है। ऐसे बालकों को अपनी बाल्यावस्था में अनेक पीड़ाएं भुगतनी पड़ती हैं तथा उसकी आँखों में भी कष्ट की आशङ्का बनी रहती है। स्वभाव से जातक वीर, क्षमाशील, कुशाग्र-बुद्धि, उदार, साहसी, आत्म-सम्मानी होता है। वह क्रोध तो करता ही है, कभी-कभी क्रोधावेश में सनकी की भाँति आचरण करने लगता है। उसके सिर में चोट लगने की भी सम्भावना रहती है। हाँ, ये अनिष्ट फल विशेषतया तब घटित होते हैं, जब सूर्यदेव किसी दुःखद-ग्रह के साथ हों या शत्रु-ग्रह के साथ हों अथवा शत्रुग्रह के घर में हों, तभी उक्त अनिष्ट फल घटते हैं अन्यथा अनिष्ट फल विहीन भी हो जाते हैं। यदि सूर्यनारायण मेष-राशिगत होकर लग्न में हों तो जातक को नेत्र-रोग अवश्य होता है, किन्तु धन की कमी नहीं रहती। सूर्य यदि बलवान् ग्रह से देखे जाते हैं, तो जातक विद्वान् भी होता है। यदि सूर्य तुला राशिगत हों तो वह बालक किसी विशेष नेत्र-रोग से प्रभावित होता है।

द्वितीय भाव—द्वितीय भाव में सूर्य के रहने से बालक अपने जीवन में मित्र-विरोधी बनता है, उसे वाहन का सुख नहीं मिलता है। ऐसे जातक को राजा की ओर से दण्ड मिलता है। नेत्र-कष्ट और शरीर में विकार होता है। शिक्षा में रुकावट होती है। जातक हठी और चिड़चिड़े स्वभाव का होता है। पुत्र-सुख भी नहीं मिलता है। नेत्र-रोग भी होता है।

तृतीय भाव—तृतीय भाव में रहकर सूर्य अपना उत्तम प्रभाव दिखलाते हैं। जातक पराक्रमी कुशाग्रबुद्धि प्रियभाषी होता है। धन-धान्य एवं नौकरों से युक्त होकर सम्मानित होता है। उसके सगे भाइयों की संख्या कम होती है। सूर्य यदि पाप-ग्रहों से युक्त हों तो विष और अग्नि से भय तथा चर्मरोग की सम्भावना होती है। सूर्य यदि पापग्रह से युक्त हों या पापग्रह से दृष्ट हों तो भाई की मृत्यु होती है, और कोई एक बहिन विधवा भी हो सकती है। कभी-कभी भाई या बहिन की मृत्यु विष या सर्पदंश से होती है। हाँ, ऐसा जातक धनवान् होता है। ग्रहों के अन्य प्रभाव से अग्रज की मृत्यु अल्प समय में हो जाती है।

चतुर्थ भाव—चतुर्थ भाव में सूर्य के रहने पर जातक मानसिक चिन्तायुक्त होता है। जातक का शरीर क्षीण या विकृत अवयव का होता है। जातक आत्मीय-जनों से द्वेष रखता है, घृणा करता है और घमण्डी तथा कपटी होता है। उसकी ख्याति भी बढ़ती है,उसकी कई स्त्री होती हैं। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक धन-सुख से रहित होता है। वह पिता की सम्पत्ति से वंचित होता है। यदि चतुर्थ स्थान का स्वामी बली-ग्रहों से युक्त हो. या लग्न चतुर्थ, सप्तम या दशम किसी भी केन्द्र-स्थान में हों तो जातक को वाहनादि सुख की प्राप्ति होती है। यदि चतुर्थ का स्वामी केन्द्र के अतिरिक्त त्रिकोणगत भाव अर्थात् तृतीय, पञ्चम अथवा नवमगत हो तो भी जातक को वाहनादि-सुख की प्राप्ति होती है।

पञ्चम भाव—यदि सूर्य पञ्चम स्थानगत हो तो जातक अल्प सन्तानों वाला होता है। उसका शरीर मोटा होता है, वह शिव या शक्ति-पूजक होता है। जातक प्रतिक्रियाशील रहता है। किन्तु उसका चित्त उद्वात रहता है। ऐसा जातक सुख एवं पुत्र से रहित भी होता है। वह वात-रोग से पीड़ित होता है। सूर्य यदि स्थिर राशिगत हों अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ राशिगत हों तो पञ्चम सन्तान की मृत्यु अल्पकाल में हो जाती है। चर अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशिगत सूर्य के होने से जातक की सन्तान का नाश नहीं होता। ऐसे जातक की स्त्री का कभी-कभी गर्भपात भी हो जाता है। पञ्चम स्थान का स्वामी यदि बल-वान् ग्रहों के साथ हो तो जातक को पुत्र-सुख मिलता है। यदि सूर्य पाप-

ग्रहों के साथ हो या उन पर पापग्रह की दृष्टि पड़ती हो तो उसको कन्याएं अधिक होती हैं। पञ्चमस्थ सूर्य पर यदि शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक को पुत्र-सुख मिलता है।

षष्ठम भाव—षष्ठम भावगत सूर्य होने से जातक को अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है। जातक बलवान् शत्रु पर प्रभाव दिखलाने वाला, विद्वान्, गुणवान् और तेजस्वी होता है। वह राज-परिवार से सम्मानित होता है और सुन्दर वाहनों से युक्त होता है। षष्ठम स्थानगत सूर्य यदि बलवान् ग्रहों से युक्त हो तो जातक नीरोग होता है। छठे स्थान का स्वामी यदि बलहीन होता हैं तो शत्रु का नाश होता है।

सप्तम भाव—सप्तम स्थान में सूर्य के रहने से जातक का शरीर दुबला तथा मझोला होता है। वह मन से चञ्चल, पापकर्मलीन और प्रभायुक्त होता है। स्वपत्नी-विरोधी एवं परस्त्री-प्रेमी होता है। दूसरों के घर भोजन करने में दक्ष होता है। एक स्त्री से अधिक सम्पर्क होते हुए दूसरी से भी सम्बन्ध बनाये रखता है। वह राज्य-सरकार के कोप से कष्ट पाता है। पर सिंह राशिगत सूर्य यदि बली हो तो जातक को एक ही स्त्री होती है।

अष्टम भाव—सूर्य यदि अष्टम भावगत हो तो जातक बुद्धि-विवेक-हीन, दुबले-शरीर और अल्प सन्तान वाला होता है। उसको नेत्र-रोग भी होता है और धन की कमी रहती है तथा शत्रु बहुत सताते हैं। उसके शिरोभाग में दर्द की सम्भावना रहती है। यदि सूर्य बली ग्रहों के साथ हो तो उसे कृषि-कर्म में सफलता मिलती है और यदि उच्च का सूर्य हो अर्थात् मेष राशिगत हो तो जातक दीर्घजीवी होता है।

नवम भाव—सूर्य यदि नवम भावगत हो तो जातक मित्र, पुत्र से सुखी होता है। वह मातृ-कुल का विरोधी और पिता का भी विरोधी होता है, किन्तु देव-पूजक होता है। जातक अच्छी सूझबूझ का उदार व्यक्ति होता है। किन्तु पैतृक-सम्पत्ति का त्याग करता है। ऐसा जातक कलही तथा मितव्ययी होता है। उसकी कृषि उत्तम होती है। जातक के भाई हों तो जातक से उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेषराशि-गत हो अथवा सिंह राशिगत हो तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहों के सहयोग से जातक देवताओं और गुरुजनों का पूजक होता है। सूर्य के तुला राशिगत होने पर जातक भाग्यहीन और अधार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हो या शत्रु-गृही हो तो पिता के लिए अनिष्टकर होते हैं। शुभग्रहों से दृष्ट सूर्य पिता को आनन्द देते हैं।

दशम भाव—दशम भाव में सूर्य के होने से जातक बुद्धिमान, धनोपार्जन में चतुर, साहसी और सङ्गीत-प्रेमी होता है, वह साधुजनों से प्रेम करता है। राज-सेवा में तत्पर एवं बहुत साहसी होता है। वह पुत्रवान और वाहन-सुख से सम्पन्न होता है। स्वस्थ और शूर-वीर होता है। सूर्य यदि मेषराशि के हों या सिंह राशि के हों तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक-स्थान के निर्माण से यश प्राप्त करता है। सूर्य यदि पापग्रहों से युक्त हों तो जातक आचरण-भ्रष्ट हो जाता है।

एकादश भाव— सूर्य एकादश भाव में हों तो जातक यशस्वी,मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और सङ्गीत-विद्या में निपुण एवं रूपवान तथा धनधान्य से सम्पन्न होता है। वह राज्यानुग्रहीत होता है। ऐसा जातक सेवकजनों पर प्रीति करने वाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंह राशिगत हों तो जातक को राजा आदि से धन की प्राप्ति होती है। ऐसे जातक को सदुपाय से भी धन मिलता है।

द्वादश भाव—द्वादश भावगत सूर्य के होने से जातक पिता-विरोधी मितव्ययी, अस्थिर-बुद्धि, पापाचरण में लीन, धन की हानि करने वाला, मन का मलीन, नेत्र-रोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातक से लोक-विरोधी कार्य भी हो जाते हैं,वह दरिद्रता के कारण भी कष्ट पा सकता है। यदि बारहवें स्थान के स्वामी कोई शुभग्रह हों तो वह जातक सदा अनैतिक कार्यों में अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्य के साथ षष्ठम स्थान के स्वामी बैठे हों तो उस जातक को कुष्ठ-रोग से कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्य के भावगत फल को जानना चाहिए।

विभिन्न योगों के जनक सूर्य

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, कुण्डली में ग्रहों-राशियों की किसी स्थिति-विशेष में कुछ ऐसी प्रभावकारी स्थिति बन जाती है, जो व्यक्ति के जीवन को निश्चित-रूपेण प्रभावित करती है। इन स्थितियों को 'योग' की संज्ञा दी गयी है। 'योग' से आशय है—अवसर, स्थिति, परिस्थिति, कुछ विशिष्ट काल-खण्डों का संयोग अथवा एक विशेष ग्रहीय-व्यवस्था।

'योग' अनेक प्रकार के हैं—सैकड़ों की संख्या में। वे शुभ भी हैं, अशुभ भी। नवग्रहों और बारह राशियों के संयोग से बारह भावों में, विभिन्न प्रकार के संयोग सम्भावित हैं। तदनुसार ही योग निर्मित होते हैं। यहाँ प्रसङ्ग-वश सूर्य से सम्बन्धित कुछ अति महत्त्वपूर्ण और विश्व-ज्योतिष में विख्यात योगों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :—

1. राजराजेश्वर योग—यदि किसी व्यक्ति की जन्मकुण्डली में सूर्य की स्थिति मीन राशि में हो और चन्द्रमा कर्क-लग्न में अपने गृह का हो, तो यह ग्रहीय-स्थिति 'राजराजेश्वर योग' की उत्पत्ति करती है। यह बहुत ही प्रभावी, सशक्त, शुभ और सुखद योग माना जाता है। धन, सम्पत्ति, सम्मान, वैभव आदि समस्त राजोचित गुण उस जातक को प्राप्त होते हैं, जिसकी कुण्डली में यह योग होता है।

2. भास्कर योग- कुण्डली में, सूर्य से दूसरे भाव में बुध हों और 'बुध' से ग्यारहवें भाव में चन्द्रमा विराजमान हों, और चन्द्रमा से पाँचवें वा नवें भाव में 'गुरु' हों तो ऐसी कुण्डली 'भास्कर योग' से संयुक्त मानी जाती है। भास्कर योग—विद्वता, ज्ञान, शक्ति, कला, सम्मान, धन, वैभव और पद का प्रदाता कहा गया है। यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में भास्कर योग हो तो वह अवश्य ही उपरोक्त विशेषताओं से संयुक्त होगा। यदि कोई अशुभ स्थिति उसकी कुण्डली में हो तो वह भी क्षीण हो जायेगी। भास्कर योग वाले जातक समाज में सम्मानित, कला-शिल्प के उपासक, बलिष्ठ, विद्वान् और वैभव-सम्पन्न होते हैं।

3. वासी योग—कुण्डली में सूर्य से बारहवें भाव में कोई ग्रह बैठा हो (एक या अनेक ग्रह बैठे हों—परन्तु चन्द्रमा नहीं, चन्द्रमा को छोड़कर ही यह विचार किया जाता है), तो वासी (वास-निवास कराने वाला) योग बनता है। अब यहाँ 'वासी योग' के दो रूप सामने आते हैं—1. सूर्य से बारहवें स्थान पर शुभ ग्रह बैठा है तो 'शुभ वासी योग' बनेगा, और 2. यदि वहाँ कोई अशुभ (पाप) ग्रह बैठा है, तो 'अशुभ वासी योग' माना जायेगा।

'शुभ वासी योग' जातक को प्रसन्न-चित्त, कार्य-कुशल, विद्वान्, गुणी, बुद्धिमान, समाज में सम्मानित बनाता है। ऐसा व्यक्ति शत्रु-जयी तथा पारिवारिक-सुख का भोगी होता है। इसके विपरीत, यदि सूर्य से बारहवें स्थान में कोई पाप (दुष्ट) ग्रह बैठा हो, तो 'अशुभ वासी योग' होता है, जो जातक को सुदूर प्रदेश (जन्म-स्थान से दूर) का प्रवासी बनाता है। ऐसे योग मानवीय गुणों से रहित, मन्द-बुद्धि, भ्रम, विस्मृति और निराशा से आक्रान्त, स्वभाव से क्रूर, निर्दय तथा स्वयं में दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

4. वेशि योग—कुण्डली में, सूर्य से दूसरे भाव में कोई ग्रह (चन्द्रमा को छोड़कर) बैठा हो तो यह स्थिति 'वेशि योग' की संरचना करती है। वेशि योग भी [illegible] से शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है। यदि

वेशि योग की स्थिति (सूर्य से दूसरे भाव में) में कोई शुभग्रह विराजमान है, तो उसे 'शुभ वेशि योग' कहा जायेगा, और यदि वहाँ कोई दुष्ट (पाप) ग्रह बैठा है, तो वह 'अशुभ वेशि योग' का जनक माना जायेगा।

'शुभ वेशि योग' वाले जातक—शोभन व्यक्तित्व वाले, मधुर-भाषी, धनी, शत्रुजयी, कुशल-वक्ता, समाज में अग्रणी, नेतृत्व में सफल और सम्मानित होते हैं। इसके विपरीत, 'अशुभ वेशि योग' में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति दुष्ट-स्वभाव वाला, नीच, अपराधी-जनों की सङ्गति में रुचि रखने वाला, षड़यन्त्री, जीविका के लिए सदैव अस्थायी साधनों पर निर्भर, लाञ्छित, खिन्न और अस्थिर-बुद्धि वाला होता है। इस प्रकार अशुभ वेशि-योग मानव-जीवन के दुःखद पहलू का सूचक होता है।

5. बुधादित्य योग—यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में सूर्य और बुध, ये दोनों ग्रह किसी भी एक ही स्थान (भाव) में विराजमान हों, तो वह स्थिति 'बुधादित्य योग' मानी जायेगी। अन्य ग्रह कहीं भी हों, परन्तु यदि कुण्डली में बुधादित्य योग है, तो वह उस जातक को बौद्धिक-दृष्टि से बहुत सम्पन्न, चातुर्य का धनी, विख्यात और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला बनाता है। अब यह बात अलग है कि यदि कुण्डली में अन्य भावों की स्थिति भी शुभ है, तो बुधादित्य योग पूर्ण प्रभाव देगा और यदि अन्य ग्रह या कोई ग्रह दुर्योग उत्पन्न करते हैं, तो बुधादित्य योग के प्रभाव से कुछ कमी आ जायेगी। फिर भी यह निश्चित है कि बुधादित्य योग (बल्कि वे सभी शुभ योग, जिनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है) अनेकों अवरोधों के रहते हुए भी, अपना सुप्रभाव अवश्य दर्शाते रहते हैं।

6. उभयचरी योग—कुण्डली में यदि लग्न-भाव में सूर्य ग्रह हों, और उनके दाँये-बाँये अर्थात् दूसरे और बारहवें भाव में, कोई भिन्न ग्रह (चन्द्रमा के अतिरिक्त) बैठे हों, तो यह स्थिति 'उभयचरी योग' बनाती है। उभयचरी योग भी दो प्रकार के होते हैं - शुभ और अशुभ। शुभ ग्रहों से बनने वाला योग शुभ फलदायक होता है और व्यक्ति को न्याय-प्रिय, सहिष्णु, धैर्यवान् तथा विवेकी बनाता है। इसके विरुद्ध पापग्रहों की स्थिति से बने हुए उभयचरी योग में जन्मा व्यक्ति कपटी, पाखण्डी, न्याय-विरोधी, पराधीन और सुख-वंचित, विपन्न-जीवन व्यतीत करता है।

7. उन्माद योग—कुण्डली का यह योग बहुत ही दुःखदायी होता है। इसकी स्थिति तब होती है, जब लग्न (प्रथम) भाव में सूर्य और सातवें भाव में मङ्गल बैठे हों। यह योग व्यक्ति को असन्तुलित, बकवादी,

अनर्गल प्रलापी, मिथ्यावादी और सनकी या विक्षिप्त बना देता है। यदि अन्य कोई ग्रह भी प्रतिकूल हो,तो ऐसा जातक उन्मत्त, भ्रम-ग्रस्त या पागल हो जाता है। ऐसे लोग अन्ततः दयनीय मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

8. अन्धत्व योग— यद्यपि सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही जगत् को प्रकाशित करने वाले ग्रह हैं। परन्तु इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा कि जब कुण्डली में ये दोनों ग्रह बारहवें भाव में एक साथ बैठ जाते हैं, तो जातक के नेत्रों के लिए अनिष्टकर परिणाम की सृष्टि होती है। ऐसे व्यक्ति को जन्म से, या युवावस्था में अथवा प्रौढ़ता तक पहुँचने पर तो अवश्य ही, अन्धत्व का अभिशाप सहन करना पड़ता है। नेत्र-ज्योति से वंचित होकर व्यक्ति को नारकीय-जीवन की यातना सहनी पड़ती है। वैसे अन्य किसी भी कारण से व्यक्ति अन्धा हो सकता है, परन्तु यदि कुण्डली में अन्धत्व योग की स्थिति है, तब तो उसका अन्धा हो जाना निश्चित जैसा रहता है।

9. राज-भङ्ग योग— यद्यपि आज हमारे देश में (लगभग सारे विश्व में) राजतन्त्र समाप्त हो चुका है, अतः राज भङ्ग का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु वास्तव में 'राज्य' शब्द का व्यावहारिक-अर्थ है—वैभव-सम्पन्नता। धन-धान्य, परिवार, वाहन, नौकर-चाकर, चल-अचल सम्पत्ति, और सम्मान-प्रभाव—जिसको यह सब कुछ प्राप्त है, उसी को 'राजा' कहा जाता है, भले ही यह भौतिक-सम्पदा मात्रा में कम या अधिक हो। अस्तु, कुण्डली में जहाँ 'राज-योग' की स्थिति राज-वैभव प्रदान करती है, वहीं 'राज-भङ्ग योग' सुख-सम्पत्ति का विनाशक सिद्ध होता है।

कुण्डली में यदि सूर्य की स्थिति तुलाराशि में दश अंश तक हो तो, वह 'राज-भङ्ग योग' कहा जायेगा। यह योग व्यक्ति के धन, वैभव, सम्पत्ति और सुख-शान्ति का विनाश कर देता है। फलतः ऐसा जातक दुःखी, विपन्न, चिन्ता-ग्रस्त, अस्थिर-बुद्धि, कुण्ठित, सदैव असफल रहने वाला, उपेक्षित (और कभी-कभी आत्मघाती भी) होता है। ऐसा योग जातक के लिए, वह चाहे साधारण किसान हो, या किसी राज्य-रियासत का स्वामी, निश्चित रूप से अशुभ, कष्टदायक,सम्पत्ति-विनाशक और दरिद्रता दायक होता है।

सूर्य की विशिष्ट स्थिति को आधार बनाकर. उपरोक्त नौ प्रमुख योगों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों प्रकार के योग (अवसर) ज्योतिष-ग्रन्थों में वर्णित हैं, परन्तु उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है।

सूर्य द्वारा प्रभावित अन्य प्रमुख योग

1. जिस जातक की लग्न मेष हो, और लग्न में ही, अथवा सातवें भाव में सूर्य और शुक्र एक साथ बैठे हों, वह पुत्र-सुख से वंचित रहता है। कारण कि यह योग उसकी स्त्री को बन्ध्या बना देता है।

2. जिस व्यक्ति की कुण्डली में सूर्य की स्थिति लग्न से दशम भाव में हो, वह पैतृक-धन (पिता द्वारा कमाये गये धन) से अवश्य लाभान्वित होता है।

3. यदि लग्न मेष हो, और सूर्य तथा चन्द्रमा भी एक साथ लग्न में ही बैठे हों तो -राजयोग की उत्पत्ति होती है। ऐसा जातक सुखी, वैभव-सम्पन्न और सम्मानित-जीवन व्यतीत करता है।

4. मेष लग्न में सूर्य की स्थिति और ग्यारहवें भाव में शनि का विराजमान होना अशुभ है। ऐसा जातक पैरों में चोट लगने से पीड़ित होता है।

5. मेष लग्न की स्थिति में, शनि लग्न भाव में हो और सूर्य छठे भाव में हो तो—यह योग व्यक्ति को आजीवन रोग-ग्रस्त बनाये रहता है।

6. मेष लग्न हो, और सूर्य दसवें भाव में बैठे हों तो– ऐसा जातक भाषण-पटु, कुशल-वक्ता, व्याख्यान-दाता, प्रचारक,उपदेशक अथवा प्रवचन-कर्त्ता होता है।

7. किसी जातक की कुण्डली में वृश्चिक राशि के सूर्य और सिंह राशि के शुक्र विराजमान हों, तो—यह योग उसे ससुराल से धन प्राप्त कराता है।

8. चतुर्थ भाव में वृश्चिक राशि के साथ सूर्य और शनि बैठे हों, तो—यह योग जातक के लिए वाहन-सुख (सवारी—घोड़ा, रथ, बैलगाड़ी, मोटर आदि) प्राप्त कराता है।

9. लग्नभाव में सूर्य का स्वगृही होना और सातवें भाव में मङ्गल-ग्रह की उपस्थिति—यह योग जातक को उन्माद-रोग से ग्रस्त करता है।

10. यदि वृश्चिक लग्न है, और तीसरे भाव में सूर्य बैठे है, साथ ही शनि की दृष्टि उन पर पड़ रही है, तो ऐसा जातक हृदय-रोग से पीड़ित होगा।

11. यदि सूर्य कुण्डली में लाभ-स्थान पर बैठे हों, परन्तु वे किसी नीच-राशि के हों, और उनके अगल-बगल में कोई ग्रह न हो तो, ऐसी

कुण्डली के विषय में कहा जाता है कि वह 'दारिद्र्य-योग से दुष्प्रभावित है।' ऐसे जातक को दरिद्रताजन्य क्लेश सहना पड़ता है।

12. किसी उच्च-राशि (शुभ) के साथ सूर्य का पञ्चम भाव में बैठना और उनके साथ ही, बुध की उपस्थिति—यह दोनों लक्षण एक साथ हों तो—व्यक्ति अवश्य ही धन-सम्पन्न होता है।

13. धनु लग्न, और लग्न में ही सूर्य-चन्द्रमा की एक साथ उपस्थिति—'दारिद्रय-योग' की रचना करती है। ऐसा व्यक्ति सदैव दरिद्र और दुःखी रहता है।

14. कुम्भ लग्न में सूर्य की उपस्थिति जातक को चर्म-रोगों से आक्रान्त करती है।

15. कुम्भ लग्न हो, और दसवें भाव में सूर्य बैठे हों,साथ ही मङ्गल चौथे भाव में विराजमान हो तो—ऐसा जातक वाहन-दुर्घटना में मृत्यु का ग्रास बनता है।

16. किसी भी कुण्डली में, पांचवें भाव में कुम्भ राशि के सूर्य को उपस्थिति जातक के भ्रातृ-सुख को नष्ट करती है। ऐसे जातक प्रायः बड़े भाई के विछोह की पीड़ा सहते है।

17. तीसरे भाव में, स्वगृही सूर्य और साथ ही शुक्र भी बैठे हो और उन पर शनि की दृष्टि (प्रकाश-किरणें) पड़ रही हो, तो जातक को पिता अथवा छोटे भाई अथवा दोनों के सुख से वंचित होना पड़ता है।

18. सूर्य तथा चन्द्रमा, दोनों का एक साथ नवम भाव में बैठना शुभ नहीं होता। ऐसे जातक का पिता प्रायः जल-दुर्घटना में दिवंगत होता है।

19. वृष लग्न की कुण्डली में, निर्बल सूर्य को राहु और शनि देख रहे हों या उनके पास बैठे हों, तो ऐसा जातक कहीं स्थायी रूप में नहीं रह पाता। नौकरी में उसे कई बार स्थान-परिवर्तन करना पड़ता है। साथ ही अनेक प्रकार की समस्याएं भी उसे परेशान करती रहती हैं।

20. तुलाराशि के सूर्य का पांचवें भाव में उपस्थित होना, जातक को अस्थि-रोग (हड्डी का विकार) से पीड़ित करता है। वह कई बार चोट-चपेट में आहत भी होता है।

21. यदि सूर्य की उपस्थिति कुण्डली के चौथे, सातवें या दसवें भाव में हो और मिथुन लग्न में केतु (अकेला ही) बैठा हो, तो—ऐसा जातक तेजवान्, पराक्रमी, बलिष्ठ और निर्भीक होता है।

22. कर्क राशि के सूर्य और चन्द्रमा, कुण्डली के दूसरे भाव में बैठे हों और मङ्गल की दृष्टि उन पर पड़ रही हो, तो ऐसा योग जातक के नेत्रों को हानि पहुँचाता है। इससे दृष्टि-हानि की आशङ्का रहती है।

23. मेष लग्न हो, सूर्य षष्ठेश से युक्त होकर छठे या आठवें भाव में बैठा हो, तो ऐसा जातक यक्ष्मा-रोग से ग्रस्त होता है।

24. कुण्डली के द्वितीय भाव में उच्च-राशि के सूर्य की उपस्थिति, उस जातक के मातृपक्ष (मामा आदि) के यशस्वी, धनी और कुलीन होने का संकेत देती है।

25. तीसरे भाव में मेष राशि के सूर्य का होना, जातक को सम्मानित, विवेकी, उच्च पदाधिकारी और सभ्य, सम्पन्न बनाता है।

26. नवम भाव में यदि नीचराशि के साथ सूर्य बैठे हों तो समझना चाहिए कि इस जातक की पत्नी का जीवन बहुत थोड़ा होगा।

27. कुण्डली के सातवें भाव में स्वगृही वूर्य की उपस्थिति यह संकेत देती है कि इस जातक की पत्नी स्वभाव से कठोर, उग्र, साहसी, दृढ़-निश्चयी, कलह-प्रिय और अहङ्कारी होमी।

28. धनु लग्न, और दसवें भाव में सूर्य तथा बृहस्पति की एकसाथ उपस्थिति यह तथ्य उजागर करती है कि वह जातक प्रशासन के क्षेत्र में यशस्वी होगा।

29. वृश्चिक लग्न हो और सूर्य छठे या दसवें भाव में बैठे हों, तो—ऐसा जातक यशस्वी और विख्यात पिता का पुत्र होता है।

30. कुण्डली में मिथुन लग्न हो, और सूर्य दसवें या ग्यारहवें भाव में बैठे हों, तो—यह योग जातक को महत्वाकांक्षी, उच्च आदर्शों वाला, गौरव-गरिमा का इच्छुक और अभिजात वर्ग से सम्पर्क रखने वाला बनाता है।

31. कर्क लग्न हो, सूर्य स्वगृही होकर दसवें भाव में विराजमान हों, साथ ही मङ्गल भी वहीं बैठे हों, तो—यह योग बहुत ही प्रभावशाली, सुख-सौभाग्य दायक और यशोवर्धक होथा है। ऐसा जातक राज-वैभव का स्वामी और उपभोक्ता होता है। इसे 'राजयोग' कहा गया है।

32. मेष राशि के उच्च-सूर्य की उपस्थिति यदि कुण्डली के दसवें भाव में हो तो,यह भी 'राजयोग' की सृष्टि करते हैं। ऐसा जातक राजाओं की भाँति प्रभावशाली और वैभव-सम्पन्न जीवन बिताता है।

33. लग्न भाव में सूर्य की उपस्थिति, स्वगृही के रूप में हो तो—वह जातक निश्चित रूप से प्रशासनिक कार्यों में दक्ष, उच्च पदाधिकारी और अपने सिद्धान्तों का दृढ़ होता है। स्वाभिमान के कारण ऐसे लोग अपना एक भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं, और उसी के द्वारा यशस्वी होते है।

34. यदि किसी कुण्डली में तुला लग्न हो और सूर्य वहीं लग्नभाव में विराजमान हों तो—ऐसा जातक राज-सम्मान प्राप्त करता है।

सूर्य का राशिगत प्रभाव

जिस प्रकार कुण्डली के बारह भावों में स्थान-भेद से सूर्य की प्रभाव भिन्नता क्रियाशील होती है, और अन्य ग्रहों की स्थिति उसे प्रभावित करती है, उसी प्रकार राशिगत सूर्य का प्रभाव भी अनेक प्रकार के परिणाम दर्शाता है। राशियों की संख्या बारह है और वे सभी एक क्रम से सूर्य के सम्पर्क में आती रहती हैं। सूर्य किस राशि में होने पर कैसा फल देते हैं, यह भी ज्योतिष-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। यद्यपि केवल एक स्थिति ही, जीवन का नियन्त्रण नहीं करती, बल्कि भावस्थ राशियाँ, ग्रह, नक्षत्र आदि भी अपना प्रभाव डालते हैं। जब कई एक कारक मिलकर एक प्रभाव की सृष्टि करते हैं, तब वह प्रभाव मानव के जीवन में प्रबल होकर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। परन्तु, जो प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, क्षीण होने के कारण, प्रकाश में नहीं आता, वह भी किसी न किसी रूप में अपनी प्रतिक्रिया करता रहता है, अतः किसी भी तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यहाँ संक्षेप में यह तथ्य प्रस्तुत किया जा रहा है कि किसी व्यक्ति की कुण्डली (जन्माङ्ग-चक्र में) किस राशि में होने पर सूर्यदेवता कैसा फल देते हैं। कहीं-कहीं विद्वानों में कुछ बातों को लेकर मतभेद भी है, परन्तु वह केवल अपवाद स्वरूप है। अधिकांश प्रतिपादन एक दूसरे से मिलता-जुलता है। सिद्धान्त और धारणा सम्बन्धी भेद नाममात्र का है, अतः उसे वरीयता न देकर, विषय के सारतत्त्व को ही ग्रहण करना श्रेयस्कर होगा।

1. **मेष**—जिस जातक की कुण्डली में सूर्यग्रह की स्थिति मेष राशि में हो, वह साहसी, पर्यटन-प्रेमी, बुद्धिमान, सम्पन्न परिवार का सदस्य होता है। परन्तु उसे रक्त और पित्तादि के कारण कष्ट भी उठाना पड़ता है। अपनी उच्च राशि में, उच्चतम अंशों तक, सूर्य की अवस्थिति जातक को धनी बनाती है। (मेष राशि में सूर्य को दस अंशों तक परमोच्च कहा गया है)। सूर्य की अनुकूलता वाले व्यक्ति तेजस्वी और अस्त्र-शस्त्र से सम्पन्न होते हैं।

2. वृष—वृष राशि में सूर्य की उपस्थिति, जातक को परिधान-प्रेमी (उत्तम वस्त्र धारण करने वाला) और सुगन्ध-सेवी बनाती है। ऐसा जातक इत्र, तेल, सुगन्धित पुष्पों का शौकीन होता है। उसके पास पशुधन भी पर्याप्त रहता है। स्त्री-वर्ग से इन लोगों का विरोध रहता है, परन्तु अपने कार्य में वे यथावसर सफलता प्राप्त करते हैं। इन गुणों के बावजूद ऐसे लोगों के लिए जल-सङ्कट (पानी में डूबने) की आशङ्का रहती है।

3. मिथुन—जिस जातक का सूर्य मिथुन राशि में स्थित होता है, वह अपने वंश-कुल का गौरव, धनी, विद्वान् और प्रायः गणित-शास्त्र का ज्ञाता होता है। ऐसे लोग नैतिक-दृष्टि से उच्च विचारों वाले, विनयशील, सभ्य, सुसंस्कृत और मधुरभाषी होते हैं। उनमें विद्यानुराग भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और धनोपार्जन में भी वे सफल रहते हैं।

4. कर्क—कर्क राशि में सूर्य की अवस्थिति शुभ-फलदायक नहीं होती। जिस व्यक्ति का सूर्य कर्क राशि में हो, वह परस्पर विरोधी मनोवृत्ति वाला होता है। उसमें जहाँ एक ओर निर्दयता, क्रूरता और दरिद्रता के लक्षण होते हैं, वहीं वह परोपकारी भी होता है। ऐसे लोग प्रायः अपने से वैचारिक संयोजन नहीं कर पाते।

5. सिंह—सिंह राशि में सूर्य की स्थिति जातक को प्रकृति-प्रेमी बनाती है। नदी, पहाड़, समुद्र, झरना, पार्क और बगीचे उसे बहुत पसन्द रहते हैं। चूँकि सूर्य सिंह राशि का स्वामी है, अतः अपनी राशि में आकर वह जातक को अपने गुणों से युक्त कर देता है। फलतः वह जातक बुद्धिमान, कला-प्रेमी, शिल्पी, पराक्रमी, साहसी, गम्भीर और दूरदर्शी होता है। सम्नान और विद्वता से युक्त ऐसा जातक समाज में एक विशेष स्थान बनाकर सम्मानित भी होता है। ऐसे लोग जिस विभाग में रहते हैं, वहाँ भी अपनी वरीयता प्रमाणित करते रहते हैं।

6. कन्या--जिस व्यक्ति की कुण्डली में सूर्य मकर राशि में स्थित हों, वह अनेक विषयों-कलाओं का ज्ञाता होता है। काव्य, साहित्य, चित्रकला, सङ्गीत, गणित आदि में ऐसे लोग अवश्य रुचि रखते हैं। ये राजसेवा अथवा राज-सम्मान के अवसर भी पाते हैं। भौतिक-दृष्टि से इस प्रकार के जातक सुखी, सम्पन्न, सौम्य और सभ्य होते हैं। अपने गुणों के नाते वे सम्मान भी पाते हैं। परन्तु इनकी शारीरिक-संरचना में एक विसङ्गति होती है—ऐसी कुण्डली वाले जातक, जिनका सूर्य सिंह राशि में बैठा हो, यदि वे स्वयं में पुरुष हैं तो उनकी मुखाकृति नारी-मुख से साम्य रखती है--कमनीय और शोभन, परन्तु यदि वह जातक स्त्री है, तो उसकी

मुखाकृति स्त्रियोचित लक्षणों से रहित, सर्वथा पुरुषों जैसी कठोर, रूक्ष और मर्दानी जैसी प्रतीत होती है।

7. तुला—तुला राशि में सूर्य की उपस्थिति अच्छी नहीं होती। ऐसा जातक यद्यपि साहसी, धैर्यवान् और पराक्रमी होता है, परन्तु उसकी चित्तवृत्ति मलिन होती है, अतः वह बहुधा आपराधिक-कार्यों में रुचि रखता है। मलिन विचारों के कारण वह अपराधी, विद्रोही, अराजक और कलह-प्रिय हो जाता है। झगड़ा-झंझट से उसे कोई भय नहीं होता। इसके बावजूद उसमें कहीं दया और परोपकार की भावना भी रहती है। वह मद्यप, (नशेबाज) भी हो सकता है। और, अपने इन दुर्गुणों के कारण प्रायः राजकोप से ग्रस्त होता है। ऐसे लोग मामले-मुकदमे और हिरासत के चक्कर में पड़ते रहते हैं। सारांश रूप में ऐसे जातक दुःखी, निर्धन, निन्दित और अशान्त होते हैं।

8. वृश्चिक—वृश्चिक राशि पर सूर्य की स्थिति व्यक्ति को झगड़ालू होने पर भी समाज में सम्मानित बनाती है। ऐसा व्यक्ति अपने परिवार—माता-पिता का विरोधी भी हो सकता है। कृपण होने के कारण वह समाज की सहानुभूति नहीं पाता। अस्त्र-शस्त्र में निपुण और साहसी होने के बावजूद भी वह अपमान का पात्र होता है। यह स्थिति उसे और भी झगड़ालू, उद्धत और क्रूर-कठोर बना देती है। ऐसे लोगों को (शत्रुओं की ओर से) विष, शस्त्र आदि का भय रहता है। यह भी एक विचित्र स्थिति है कि ये लोग विष और शस्त्रादि के माध्यम (व्यापार, तस्करी, दुरुपयोग) से ही धनोपार्जन भी करते हैं।

9. धनु—धनु राशि में बैठे सूर्य का प्रभाव जातक के लिए सामान्य रूप से शुभ ही कहा जायगा। यद्यपि वह तेज-तर्रार और तीखे स्वभाव का होता है, फिर भी उसमें प्रतिभा होती है, वह सन्तोष भी कर लेता है और बुद्धिमान होने के साथ मित्र-सेवी भी होता है। मित्रों से लाभ पाना और उन्हें लाभ पहुँचाना, दोनों उसके लिए उत्साह-बर्द्धक होते हैं। ऐसा जातक शिल्पज्ञ और समाज में सम्मानित होता है। अपने श्रम और बुद्धिबल से वह धनार्जन में भी सफल रहता है।

10. मकर—मकर राशि में सूर्य का होना अशुभ फल देता है। ऐसा जातक, जिनकी कुण्डली में सूर्य मकर राशि में हो, दुर्भाग्य-ग्रस्त होते हैं। वे लोग पराधीन, निर्धन, जीवन-संघर्ष में दर-दर भटकने वाले, वंश-विरोधी, विकृत मानसिकता से ग्रस्त, नीच-आपराधिक कर्मों में लीन रहने वाले, दुःखी, विपन्न, कुण्ठा-ग्रस्त, विवेक-रहित होते हैं। यद्यपि थोड़ी

चेतना उनमें अवश्य रहती है, जिसके प्रभाव से जीविका के लिए नाना प्रकार के कार्य करते है, परन्तु अन्ततः असफल ही रहते हैं। उन्हें जीवन में सुख-शान्ति की उपलब्धि 'नहीं' के तुल्य होती है।

11. **कुम्भ**--कुम्भ राशि में भी सूर्य की स्थिति अमङ्गलकारी होती है। मकर के सूर्य की भाँति कुम्भस्थ सूर्य भी जातक को नीचकर्मों में रत रखता है। ऐसे जातक तन-मन दोनों से मलिन. अशोभन और घृणास्पद होते हैं। वे सर्वत्र उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार की ठोकरें सहते हुए, अभाव-पीड़ा ग्रस्त जीवन बिताते हैं।

12. **मीन**—मीन राशिगत सूर्य का प्रभाव मिश्रित होता है। ऐसे लोग उद्यमी, व्यवसायी, कृषिकर्त्ता होते हैं। वे पर्याप्त धनोपार्जन करने के बावजूद भी सुख-शान्ति से वंचित रहते हैं। कारण कि परिवार के लोग—(स्वजन ही) उसे नाना प्रकार से प्रताड़ित करते रहते है। उपार्जन के बाद भी वह धन का सुख नहीं पाता। पुत्र-सुख भी उसे कम ही प्राप्त होता है। वे स्वयं तो अपराधी या नीच नहीं होते, परन्तु दुर्भाग्य की मार उन्हें सदैव जर्जर बनाये रहती है। कठोर श्रम और भाग-दौड़ का जीवन बिताकर भी वे धन और पारिवारिक-प्रेम के लिए तरसते रहते हैं। ऐसे जातकों के लिए जल-क्षेत्र विशेष अनुकूल होता है। वे जल में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं—नमक, सीपी, मोती, बालू, मोरङ्ग, मछली आदि के व्यापार में विशेष सफलता पाते हैं।

सूर्य में रोग-नाशक स्थितियाँ

अनेक विद्वानों ने ज्योतिष-शास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित यह निष्कर्ष घोषित किया है कि व्यक्ति की जन्मकुण्डली में किन्हीं विशेष स्थितियों में बैठे सूर्य का प्रभाव रोग-विशेष की उत्पत्ति करता है। उनके मतानुसार जहाँ सूर्य की किरणें प्राणदायिनी हैं, वहीं विपरीत स्थिति में वे घातकतम रूप ले लेती हैं। ऐसी दशा में रोगोपचार के लिए सूर्य के तत्सम्बन्धी दुष्प्रभाव का शमन करना भी आवश्यक होता है। विभिन्न राशियों (भावों) ग्रहों के साथ सूर्य की युति किस प्रकार रोगकारी हो सकती है, इसका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है :—

● यदि कुण्डली में सूर्य कर्क राशि में बैठा हो, और उक पर शनि की दृष्टि पड़ रही हो तो—ऐसा जातक अर्श (बवासीर) रोग से आक्रान्त होता है।

● शनि की दृष्टि से प्रभावित, कर्क राशि में स्थित सूर्य, जिस

व्यक्ति की कुण्डली में दीख पड़े, समझना चाहिए कि इसे वात-व्याधि (गठिया) की पीड़ा सहन करनी पड़ेगी।

● कर्क राशि का सूर्य यदि बुध की दृष्टि में पड़ रहा हो तो ऐसा जातक कफ और वातजन्य रोगों से ग्रस्त होता है।

● कर्क राशि में बैठा हुआ सूर्य, मङ्गल-ग्रह की दृष्टि में आने पर भगन्दर रोग की उत्पत्ति करता है।

● सिंह राशि में बैठे सूर्य को नेत्र-रोगकारी (तिमिर-रतोंधी) माना गया है।

● यदि कुम्भ राशि में सूर्य बैठा हो तो—ऐसा जातक हृदय-रोग से ग्रस्त होता है।

● कुण्डली के अष्टम भाव में सूर्य बैठा हो, साथ में शनि और मङ्गल भी उपस्थित हों तो ऐसी कुण्डली वाला जातक मिर्गी-रोग (अपस्मार) से पीड़ित होता है।

● शत्रुराशि में बैठा हुआ सूर्य नेत्र-रोग, कृमि-रोग और कुबड़ापन (पंगुता) उत्पन्न करता है।

● आठवें भाव में सूर्य बैठा हो, साथ ही मङ्गल उसे देख रहा हो, तो, ऐसे जातक विसर्प, मसूरिका आदि रोगों से पीड़ित होते हैं।

● आठवें भाव में सूर्य के साथ मङ्गल और राहु की उपस्थिति जातक को कुष्ठ-रोगी बनाती है।

● किसी भी, एक ही राशि में, सूर्य, शुक्र, शनि की उपस्थिति से भी जातक कुष्ठ-रोगी होता है।

● सिंह राशि में बैठा सूर्य यदि शुक्र द्वारा दृष्ट हो तो—ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति को कुष्ठ-रोग होने की पूरी सम्भावना रहती है।

● वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य को यदि शुक्र-ग्रह देख रहा हो तो—भी जातक के लिए कुष्ठ-ग्रस्त होने की आशङ्का रहती है।

● किसी भी नीच राशि में बैठे होने पर, सूर्य का प्रभाव कुष्ठकारक हो जाता है।

● शुक्र की दशा में, सूर्य की अन्तर्दशा होने पर जातक अनेक प्रकार के रोगों—उन्माद, नेत्र-विकार, उदर-रोग, मुखपाक आदि से ग्रस्त होता है।

● सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा भी अनेक प्रकार के रोग, यथा—ज्वर, श्वेत कुष्ठ, कण्ठ-रोग और शिरो-रोग (मस्तक-पीड़ा, अनिद्रा, भ्रम) उत्पन्न होते हैं।

रोगोपचार का औषधीय-जल

सूर्य की विपरीतता से उत्पन्न होने वाले विभिन्न रोगों के उपचार प्रसङ्गानुसार अन्यत्र वर्णित हैं। यहाँ एक सर्वसिद्ध प्रयोग 'तान्त्रिक-जल' का वर्णन किया जा रहा है। विभिन्न औषधियों से मिश्रित यह तान्त्रिक-जल सूर्य की ग्रहजनित व्याधियों तथा सूर्य सम्बन्धी (विकिरणीय) अन्य उपसर्गों का शमन करने में परम प्रभावी सिद्ध हुआ है। जब कोई सूर्य-प्रभाव जनित कष्ट हो, तो इस जल के स्नान से बहुत लाभ होता है। वैसे, प्रत्येक रोग की अलग-अलग औषधि हैं: 'यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र' के प्रयोग हैं और रत्न-धारण का विधान भी है। परन्तु, यह 'जल' ऐसा है कि चाहे जिस उपचार के साथ प्रयुक्त किया जाये, लाभकारी ही रहता है। यहाँ तक कि यह अन्य उपचारों की लाभप्रद शक्ति में वृद्धि कर देता है।

आध्यात्मिक उपचारों में, सूर्य का अनिष्टकारी प्रभाव दूर करने के लिए सूर्याथर्व शीर्ष, आदित्यहृदय स्तोत्र, नेत्रोपनिपद् आदि का पाठ, सूर्य-पूजा,सूर्य नमस्कार,व्रत-उपवास और पूजा-पाठ बहुत प्रभावी सिद्ध होते हैं।

सूर्य के दुष्प्रभाव का शमन करने वाला 'तान्त्रिक-जल' इस प्रकार निर्मित होता है :—

रविपुष्य-योग के दिन अथवा किसी भी रविवार को (किन्तु इसे शुभ योग, मुहूर्त्त से युक्त होना चाहिए), प्रातः स्नानोपरान्त, पूर्व की ओर मुंह करके, ऐसी स्थिति में बैठें कि सूर्य की रश्मियाँ सामने से आकर शरीर पर पड़ रही हों। तब निम्नलिखित औषधियों—सफेद चन्दन, लाल चन्दन, नागकेशर, दूब, काली तुलसी, लाल कमल, लाल गुलाब, लाल कनेर के फूल, भोजपत्र, प्रियंगु. आँवला और खस—को (इन्हें पहले से ही किसी शुभ दिन (रविवार को विशेष उत्तम) संग्रहीत करके रख लेना चाहिए) खरल में जौकुट करें। तदुपरान्त सफेद बोतल या जार में, शुद्ध जल के साथ भरकर धूप में रख दें। जार-बोतल की सुविधा न होने पर, किसी भी स्वच्छ तांबे के पात्र में भर सकते हैं। औषधियों का मिश्रण जितना हो, उसका बीस गुना जल होना चाहिए। तीन पहर तक वह औषधियुक्त जल रखा रहे। फिर औषधियों को मलकर जल को छान लें। वह जल स्नान के लिए सर्वश्रेष्ठ 'औषधीय और तान्त्रिक-जल' होगा।

इस जल से स्नान करने पर अनेक प्रकार के सूर्यकोप-जनित रोग शान्त हो जाते हैं। जहाँ तक रङ्गीन बोतल की बात है, लाल रङ्ग की बोतल का जल उत्तेजक, और नीली बोतल का जल शान्तिदायक होता है : सफेद बोतल सर्वश्रेष्ठ होती है। परन्तु औषधीय-जल को प्रकाश में अथवा नङ्गी जमीन पर नहीं रखना चाहिए। अथर्व वेद में लिखा है—

अपचितः प्र पततः सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥

6 सूर्य ग्रहण क्या है ?

सामान्य-परिचय

आधुनिक पाश्चात्य खगोल-शास्त्रियों (वियद्विज्ञानियों) ने भी अथक श्रम करके विषय वस्तु को बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। किन्तु उनका ध्येय ग्रहण के तीन प्रयोजनों में से तीसरा प्रयोजन—सूर्य-चन्द्रमा के बिम्बों का भौतिक एवं रासायनिक अन्वेषण ही है। वे धार्मिक महत्त्व को तथा लोगों में कौतूहल-जनक उसके चमत्कार को उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम संक्षेप में सूर्य-चन्द्र-ग्रहणों का सामान्य परिचायत्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्क-पिण्डों के सामने जब कोई अप्रकाशित अपार-दर्शक पदार्थ आ जाता है, तब उस तेजस्वी ज्योतिष्क-पिण्ड का प्रकाश उस अपार-दर्शक पदार्थ-भाग के कारण छिप जाता है और दूसरे पार वालों के लिए छाया बन जाती है। यही छाया 'उपराग' या ग्रहण का रूप ग्रहण कर लेती है।

'चन्द्रमा' पृथ्वी का उपग्रह और अपार-दर्शक है, जो स्वतः प्रकाशक न होने के कारण अप्रकाशक पिण्ड है। अण्डे के आकार वाले अपने भ्रमण-पथ (अक्ष) पर घूमते हुए वे सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। वे कभी पृथ्वी के पास और कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम से कम अन्तर 1,21000 मील और अधिक से अधिक अन्तर 25,30,000 मील होता है। अपने भ्रमण-पथ पर चलते हुए चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाते हैं और कभी-कभी (जब तीनों बिल्कुल सीध में होते हैं, तब) सूर्य के प्रकाश को ढँक लेते हैं—हमारे लिए उसे मेघ की भाँति रोक देते हैं। जिससे सूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है। जब वे पृथ्वी के पास हों, राहु या केतु बिन्दु पर हों तब उनकी परछाईं पृथ्वी पर पड़ती है। पास होने के कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिए सूर्य पूर्णतः ढँक जाते हैं और तब हम 'पूर्ण सूर्यग्रहण' कहते हैं। उस समय चन्द्रमा का अप्रकाशित भाग हमारी घनी छाया (प्रच्छाया) रहने से दिखालयी नहीं देते। उतने भाग पर सूर्य

का सर्वग्रास (खग्रास) सूर्यग्रहण होता है और जिस भाग पर कम परछाईं (उपछाया) पड़ती है, उस पर सूर्य का खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी—ये तीनों जब एक सीध में नहीं होते अर्थात् चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दु पर न होकर, कुछ ऊँचे या नीचे होते हैं, तब सूर्य का खण्ड-ग्रहण होता है। और, जब चन्द्रमा दूर होते है,तब उनकी परछाईं पृथ्वी पर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलाई पड़ते हैं। उनके बिम्ब के छोटे होने से सूर्य का मध्य-भाग ही ढँकता है, जिससे चारों ओर कर्पणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार के ग्रहण को कर्पणाकार या वलयाकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहण को 'खग्रास' और अपूर्ण को 'खण्डग्रास' कहा जाता है।

ग्रहण के रूप

सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—1. सर्वग्रास या खग्रास, जो सम्पूर्ण सूर्य-बिम्ब को ढँकने वाला होता है। 2. कर्पणाकार या वलयाकार, जो सूर्य-बिम्ब के बीच का भाग ढँकता है तथा 3. खण्ड-ग्रहण, जो सूर्य-विम्ब के अंश को ही ढँकता है। इनकी निम्नाङ्कित परिस्थितियाँ होती हैं :—

1. 'खग्रास सूर्यग्रहण' तब होता है, जब (क) अमावास्या हो, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दु पर हो और (ग) पृथ्वी समीप बिन्दु पर हो। इस प्रकार की स्थिति में चन्द्रमा की गहरी छाया जितने स्थानों पर पड़ती है, उतने स्थानों पर खण्डग्रास-ग्रहण होता है और जहाँ वे दोनों परछाइयाँ नहीं होतीं, वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है। इसलिए ग्रहण लिखते समय ग्रहण के स्थानों एवं प्रकार को भी सूचित करना पञ्चाङ्ग की प्रक्रिया है।

2. कर्पणाकार अथवा वलयाकार सूर्यग्रहण तब होता है, जब (क) अमावस्या होती है। (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दु पर होते हैं। (ग) चन्द्रमा पृथ्वी से दूर विन्दु पर होते हैं।

3. खण्डित-ग्रहण तब होता है, जब (क) अमावस्या होती है। (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दु पर न होकर, उनमें से किसी एक के समीप होते हैं।

ग्रहण की अवधि

खगोल-शास्त्रियों ने गणित से निश्चित किया है कि 18 वर्ष, 18 दिनों की अवधि में 41 सूर्यग्रहण और 29 चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्ष में

2 सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिए। हाँ, यदि किसी वर्ष में दो ही ग्रहण हुए तो दोनों सूर्यग्रहण ही होंगे। यद्यपि 1 वर्ष में 7 ग्रहण तक सम्भाव्य हैं, तथापि चार से अधिक ग्रहण बहुत कम देखने में आते हैं। प्रत्येक ग्रहण 18 वर्ष 11 दिन बीत जाने पर पुनः होता है। किन्तु वह अपने पहले के स्थान में ही हो—यह निश्चित नहीं है, क्योंकि सम्पात-बिन्दु 'चल' है।

साधारणतया सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, पर सच तो यह है कि चन्द्रग्रहण से कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं, तीन चन्द्रग्रहण पर चार सूर्यग्रहण का अनुपात आता है। चन्द्रग्रहणों के अधिक देखे जाने का कारण यह होता है कि वे पृथ्वी के आधे से अधिक भाग में दिखलाई पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वी के बहुत थोड़े भाग में दिखलाई पड़ता है। प्रायः सौ मील से कम चौड़े और दो हजार से तीन हजार मील लम्बे भाग में दिखलाई पड़ते हैं। बम्बई में खग्रास सूर्यग्रहण दिखायी देगा और अहमदाबाद में दिखायी नहीं पड़ेगा।

खग्रास चन्द्रग्रहण चार घण्टों तक दिखायी पड़ता है, जिनमें दो घण्टों तक चन्द्रमण्डल बहुत ही काला नजर आता है। खग्रास सूर्यग्रहण दो घण्टों तक रहता है, परन्तु पूरा सूर्यमण्डल 8-10 मिनटों तक ही घिरा रहता है और साधारणतः तो दो-तीन मिनटों तक ही ढंका रहता है, उस समय रात्रि जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्य का खग्रास-ग्रहण दिव्य होता है। सूर्य के पूरी तरह ढंकने के पहले पृथ्वी का रङ्ग बदल जाता है और यत्किंचित् भय का सञ्चार होता है। चन्द्रमण्डल तेजी से सूर्य-बिम्ब को ढंक लेता है, जिससे अन्धेरा छा जाता है। पशु-पक्षी भी विशेष परिस्थिति का अनुभव कर अपनी रक्षा का उपाय करने लगते हैं। परन्तु आकाश की भव्यता और उपयोगिता बढ़ जाती है। सूर्य के पार्श्व प्रान्त में मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। उसके चारों ओर मोती के समान स्वच्छ मुकुटावरण दृगोचर होता है, जिससे तेज से आँखों में चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचे से सूर्य की लाल ज्वाला (प्रोन्नत ज्वाला) निकलती देख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाश से मनुष्यों के मुँह लाल वर्ण के-से जान पड़ते हैं। किन्तु यह दृश्य दो-चार मिनट तक ही दिखलाई पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्य को देखने के लिए दैवज्ञ-ज्योतिषी और भौगोलिक दूर-दूर से ज्ञान-पिपासा शान्त करने की प्रक्रिया में यन्त्रों से सज्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास सूर्यग्रहण) होता है। भारत-वर्ष में सन् 1871 ई० और सन् 1898 ई० में सूर्य के खग्रास ग्रहण लगे थे।

आचार्य 'आर्यभट्ट' और 'ब्रह्मगुप्त' ने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमा की गति की अवगति 'ग्रहण' से ही हुई। हम गणित द्वारा कह सकते हैं कि स्थान-विशेष में कितनी अवधि में कितने ग्रहण लग सकते हैं। उदाहरणार्थ-बम्बई में वर्षभर में प्रायः चार सूर्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किन्तु लगभग दो सौ वर्षों के कालान्तर पर कुल मिलाकर सात ग्रहणों का होना सम्भाव्य है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण अथवा पाँच सूर्यग्रहण और दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणत. प्रतिवर्ष दो ग्रहणों का होना अनिवार्य है। हाँ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनों ही सूर्यग्रहण होते हैं। गणित द्वारा आगामी हजारों वर्षों के ग्रहणों की संख्या उनकी तिथि और ग्रहण की अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है।

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमा में ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहों उपग्रहों में भी होते हैं, जिसके लिए विशेष कृत्य निर्धारित नहीं हैं। निदान ग्रहों उपग्रहों की गतिशीलता विशेष स्थिति में एक से अन्य के प्रकाश का आवरण हो जाना या छाया से उसका रुक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रमा से सम्बद्ध होने पर ही 'ग्रहण' कहा जाता है। पृथ्वी पर ग्रहण के प्रभाव होने से धार्मिक-कृत्य—स्नान, दान, जपादि का विधान है।

ग्रहण के धार्मिक-कृत्य

सूर्यग्रहण के बारह घण्टे और चन्द्रग्रहण के नौ घण्टे पहले से विधवा, यति, वैष्णव और विरक्तों को भोजन नहीं करना चाहिए। बाल-वृद्ध, रोगी और पुत्रवान्-गृहस्थ के लिए यह नियम अनिवार्य नहीं है। ग्रहण-काल में शयन और शौचादि-क्रिया निषिद्ध हैं। देव-प्रतिमा का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। सूर्यग्रहण में 'पुष्कर' और कुरुक्षेत्र' के तथा चन्द्रग्रहण में 'काशी' के स्नान, जप. दानादि का बहुत महत्त्व है। ग्रहण में विहित श्राद्ध कच्चे अन्न या स्वर्ण-दान ही करने का विधान है। श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिए, अन्यथा नास्तिकता-वश कीचड़ में फंसी गाय की भाँति दुर्गति में पड़ना पड़ता है।

जन्म-नक्षत्र अथवा अनिष्ट फल देने वाले नक्षत्र में ग्रहण लगने पर उसके दोष की शान्ति के हेतु सूर्यग्रहण में सोने का और चन्द्रग्रहण में चाँदी का बिम्ब तथा घोड़ा, गौ, भूमि, काले तिल एवं घी का यथाशक्ति दान देने का महत्त्व शास्त्रों में प्रतिपादित है। भगन्नाम-सङ्कीर्त्तन और जप आदि तो सभी को करना ही चाहिए।

सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्।''

7 | चाक्षुषी-विद्या और सूर्योपासना

परिचय

मानव-शरीर में दस अङ्गों को प्रमुखता प्राप्त है। उन्हें 'इन्द्रिय' कहते हैं। उन दस में पाँच 'ज्ञानेन्द्रियाँ' हैं और पाँच को 'कर्मेन्द्रिय' कहते हैं। दसों इन्द्रियों में गुणवत्ता, उपयोग, प्रभाव और व्यावहारिकता की दृष्टि से 'आँखों' को सर्वश्रेष्ठ इन्द्रिय कहा गया है—

'सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम् ।'

यह 'नयन' शब्द आँखों का पर्याय है। नेत्र, चक्षु, अक्षि, दृग् और लोचन—ये सभी शब्द 'आँख' के पर्यायवाची हैं।

आँखें न होतीं, तो मनुष्य के लिए संसार घोर अन्धकारमय होता। प्रत्येक वस्तु, जीव-जन्तु, वनस्पति और दृश्य—तभी तक शोभन और किसी विशेष रूप-रङ्ग वाला है, जब तक हम उसे देखते हैं। जो कुछ दृष्टिगत न हो, उसका अस्तित्व 'नहीं' के तुल्य है। यही कारण है कि अन्धकार में सब कुछ लुप्त हो जाने पर, हम किसी दृश्य की अनुभूति नहीं कर पाते।

'दृष्टि' और 'प्रकाश' में घनिष्ट सम्बन्ध है। दृष्टि प्रकाश को तभी तक ग्रहण कर पाती है, जब तक वह स्वस्थ हो। दृष्टि की स्वस्थता के लिए नेत्रों का स्वस्थ-सतेज होना आवश्यक है। नेत्र ही वह फलक हैं, जिन पर सामने का दृश्य अङ्कित होकर मन-मस्तिष्क को उसकी प्रभावानुभूति कराता है। अतः नेत्रों का नीरोग, सबल, सतेज और दृष्टि-सक्षम होना आवश्यक है।

प्रकाश का सबसे बड़ा और प्रमुख उत्स सूर्य-बिम्ब है। सूर्य से ही संसार प्रकाशित है। और, चूंकि प्रकाश ही नेत्रों को दृष्टि देता है, अतः नेत्र और प्रकाश में घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु जहाँ नेत्रों के लिए 'प्रकाश' परम आवश्यक है, वहीं उसकी (प्रकाश की) एक सीमा और स्थिति-विशेष ही नेत्रों के लिए हितकारी होती है। औचित्य अर्थात् सङ्गति (अनुपात) के विपरीत प्रकाश (भले ही वह कम हो, या अधिक) नेत्रों के

लिए हानिकर होता है। हम आये-दिन अनेक प्रकार के नेत्र-रोगियों के बारे में पढ़ते-सुनते हैं। निश्चय ही वे रोगी किसी न किसी रूप में प्रकाश के दुष्प्रभाव से ग्रस्त होते हैं।

नेत्र-चिकित्सा के लिए, जहाँ आयुर्वेद ने अनेक प्रकार की औषधियों का अनुसन्धान-आविष्कार किया है। वहीं अध्यात्म के क्षेत्र में नेत्र-रोगों से मुक्ति पाने के लिए 'सूर्य-साधना' की उपयोगिता प्रतिपादित की गयी है। सूर्य का प्रकाश से, और प्रकाश का नेत्रों से घनिष्ट सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि यदि किसी भी उपाय से सूर्य-रश्मियाँ नेत्रों के प्रति अनुकूल हो जाएं, तो रोग-विकार से अवश्य ही मुक्ति मिल सकती है। औषधीय-उपायों के साथ-साथ आध्यात्मिक-उपाय के रूप में सूर्योपासना का अवलम्ब लेने से विशेष लाभ हो सकता है। नेत्ररोग-नाशक, सर्वाधिक प्रभावी साधना के रूप में एक स्तुति आर्ष-ग्रन्थों में प्राप्त होती है—चाक्षुषी-विद्या। कहीं-कहीं इसे 'चक्षुष्मती-विद्या' भी कहा गया है। इसके प्रणेता कोई सांकृति देवता रहे हैं। उन्होंने सूर्य-स्तुति के रूप में यह साधना प्रारम्भ की थी। विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से, स्नानोपरान्त शुद्ध होकर, श्रद्धा-भक्ति के साथ, भगवान् सूर्य की पूजा करके, इस स्तुति- (चाक्षुषी-विद्या) का पाठ करता है, वह सदा नेत्रों की व्याधि से मुक्त रहता है। आठ सुयोग्य ब्राह्मणों को इस विद्या का ज्ञान देने (उन्हें विधिवत् इसकी शिक्षा और साधना-पद्धति बताने) से—साधक को विशेष सिद्धि प्राप्त होती है।

चाक्षुषी-साधना की विधि

किसी शुभ रविवार के दिन (रवि-पुष्य योग हो तो अत्युत्तम है)। प्रातःकाल पूर्व की ओर (उदित हो रहे सूर्य की ओर) मुँह करके बैठें। नेत्र बन्द करलें और मन ही मन इस विश्वास के साथ कि 'मेरा नेत्र-विकार दूर हो रहा है', विधिवत् चाक्षुषी-मन्त्र का जप करें। रविपुष्य योग अथवा हस्त नक्षत्र वाले रविवार, अथवा अन्य किसी शुभ रविवार से प्रारम्भ की गयी यह साधना (चाक्षुषी-मन्त्र का जप) लगातार बारह रविवारों तक (प्रत्येक रविवार को) की जाती है।

पूजन-विधि

सर्वप्रथम ताँबे के लोटे में शुद्ध जल भरें। उसमें लाल कनेर के पुष्प, लाल चन्दन का घोल मिलायें। उसी जल से सूर्य भगवान् को इस स्तुति के द्वारा अर्घ्य देना चाहिए :—

ॐ एहि सूर्यो सहस्रांशोः तेजोराशि जगत्पते ।
अनुकम्पय मा भक्तं, गृहाणामर्घ्यं दिवाकरः ॥

अर्घ्य के पश्चात् धूप-दीप देकर, विनियोग और ध्यान करना चाहिए।

विनियोग

● ॐ तस्याश्चाक्षुषी विद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

अथवा

● ॐ चक्षुष्मती मन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, नाना छन्दांसि, चक्षुष्मती देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यान-स्तुति

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पं कन्दुकं बिभ्रतीं करैः ।
रौप्यसिंहासनारूढां देवीं चाक्षुष्मतीं भजे ॥

चाक्षुषी-विद्या (जप-स्तुति)

प्राचीन ग्रन्थों में चाक्षुषी-विद्या (नेत्ररोग-हारी स्तुति) के कई पाठ मिलते हैं। उनमें से दो स्तुतियाँ, जो सर्वाधिक प्रचलित और प्रभावी मानी जाती हैं, यहाँ प्रस्तुत हैं। साधक अपनी रुचि, सुविधा और श्रद्धा के अनुसार इनमें से किसी भी एक का पाठ कर सकते हैं। दोनों ही प्रामाणिक और लाभकारी हैं। उपनिषद्-ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख है :—

● ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय । मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधक दुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः अरुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो भगवान् शुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिप्रतिरूपः ।

दूसरा पाठ इस प्रकार है :—

• ॐ सूर्यायाक्षितेजसे नमः, खेचराय नमः असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। उष्णो भगवान शुचिरूपः। हंसोभगवान शुचिर प्रतिरूपः। वयः सुपर्णा उपसेदरिन्द्रं प्रिय मेघा ऋषयो नाधमानाः। अवध्वान्तमूर्णुं हि पूर्धि चक्षुर्मुंमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्। पुण्डरीकाक्षाय नमः। पुष्करे क्षणाय नमः। अमले क्षणाय नमः। कमले क्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। श्री महाविष्णवे नमः।

नेत्ररोग-नाशक गायत्री मन्त्र

'गरुड़-गायत्री' नाम से प्रसिद्ध निम्नलिखित मन्त्र का दैनिक-जप भी नेत्र-रोगों के निवारण में बहुत सहायक होता है—

ॐ पक्षिराजाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि।
तन्नो गरुडः प्रयोवयात्॥

अन्य स्तुति-पाठ

कुछ विद्वान् और साधक पूर्व-वर्णित चाक्षुष्मती पाठ (प्रथम) के साथ निम्नाङ्कित अंश और जोड़ते हैं :—

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं,
हिरण्मयं ज्योतिरूपं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः,
पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

ॐ नमो भगवते श्री सूर्यायादित्यायाऽक्षितेजसेऽह्नो वाहिनि वाहिनि स्वाहा॥

ॐ वयः सुपर्णा उपसेदरिन्द्रं,
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमुर्णुं हि पूर्धि—
चक्षुर्मुंमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्॥

ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः।
ॐ पुष्करेक्षणाय नमः।
ॐ कमलेक्षणाय नमः।
ॐ विश्वरूपाय नमः।
ॐ श्री महाविष्णवे नमः।
ॐ सूर्यनारायणाय नमः।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

समापन मन्त्र

उपरोक्त स्तुतियों में से कोई भी एक लेकर, उसका नित्य पाठ करना चाहिए। पाठ समाप्त होने पर प्रतिदिन समापन के रूप में, निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए दस बार, अग्नि में गोघृत की आहुति देनी चाहिए। यदि गोघृत के अभाव अथवा अन्य किसी कारण से आहुति देना सम्भव न हो, तो मानसिक रूप में, आहुति देने की श्रद्धापूर्ण कल्पना करते हुए, इस मन्त्र का दस बार जप करना चाहिए :—

● 'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि स्वाहा।'

इस प्रकार, किसी भी रूप में की गयी सूर्योपासना अवश्य ही स्वास्थ्यकर, आरोग्यदायक और जीवनप्रद सिद्ध होती है :—

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

चाक्षुषी यन्त्र-साधना

'चाक्षुषोपनिषद्' में एक बत्तीसा-यन्त्र इस प्रकार वर्णित है। इसकी व्याख्या में कुछ विद्वान् इसे 'चाक्षुषी-तन्त्र' कहते हैं। इस यन्त्र की प्रभावशीलता के सम्बन्ध में सभी विद्वान् एकमत हैं कि इसकी साधना से नेत्र-रोग अवश्य दूर हो जाते हैं। उस यन्त्र की प्रतिकृति और साधना-विधि निम्नलिखित है :—

चाक्षुषी-यन्त्र

'उपनिषद्' में वर्णित चाक्षुषी-यन्त्र इस आकृति में बनाया जाता है :

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

बत्तीसा-यन्त्र

यह एक आंकिक-यन्त्र है। इसके प्रत्येक वर्ग की संख्याएं, किसी भी सिरे (ओर-छोर) से जोड़ी जायें तो उसका योगफल 32 होता है। इसी कारण इसका नाम 'बत्तीसा-यन्त्र' है। नेत्ररोग-निवारण में इसका प्रभाव आश्चर्यजतक रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसकी साधना-पद्धति में कुछ मतान्तर भी है। अस्तु, किसी भी पद्धति से उपासना की जाय, श्रद्धा और शुचिता के आधार पर यह यन्त्र अवश्य ही फलदायी प्रमाणित होता है।

यन्त्र की निर्माण-विधि

किसी भी शुभ रविवार के दिन प्रातः स्नानादि से शुद्ध होकर, शुद्ध आसन पर बैठें, और पूर्व की ओर मुंह करके, सूर्यदेव का स्तवन करते हुए हल्दी का रस (घोल) तैयार करें। अनार की लकड़ी की कलम बनायें और उससे हरिद्रामसि (हल्दी की स्याही) से कांसे की थाली में भीतर की ओर (जहाँ भोजन रखा जाता है) उपरोक्त यन्त्र की रचना करें। तत्पश्चात् तांबे की चार मुख वाली दीपदानी में, चार बत्तियाँ (चारों दिशाओं की ओर) जलाकर यन्त्र की आरती करके, उसी के मध्य में उस दीपक को रखदें। इसके बाद चन्दन, अक्षत, पुष्प आदि से यन्त्र की पूजा करें। पूजा के पश्चात् हल्दी की गाँठों से बनी हुई माला पर 'चाक्षुषी बीज-मन्त्र' का जप करें। यह जप कम से कम 6 या 12 माला होना चाहिए। माला 108 दानों की होती है। बीज-मन्त्र की 6 माला जपकर, पीछे लिखी हुई 'चाक्षुषी-स्तुति' के 12 पाठ करें। तदनन्तर पुनः बीज-मन्त्र की 5 मालाएं जपें। इसके पश्चात् सूर्यदेव की समापन-स्तुति का पाठ करके, प्रणाम करते हुए, मन में यह विश्वास जमायें कि मेरा नेत्र-विकार दूर हो रहा है।

यदि ऐसा सम्भव न हो तो केवल यन्त्र बनाकर बीज-मन्त्र की ही 12 मालाएं नित्य जपने से भी नेत्र-कष्ट दूर हो जाते हैं।

चाक्षुषी बीज-मन्त्र

ॐ ह्रीं हंसः।

बत्तीसा-यन्त्र के दो अन्य प्रयोग

चाक्षुषी-साधना के अतिरिक्त, भौतिक-कष्टों के निवारण हेतु भी 'बत्तीसा-यन्त्र' का प्रयोग होता है। यहाँ उसकी दो सरलतम और चिर प्रचलित विधियाँ लिखी जा रही हैं, श्रद्धालु-जन इनसे लाभ उठा सकते हैं।

● **सर्वदुःख-निवारक प्रयोग**—किसी शुभ रविवार के दिन-भोजपत्र, अथवा शुद्ध सादे कागज पर हल्दी के रस की स्याही और अनार की टहनी की कलम से इस यन्त्र की रचना करें। समस्त पूजन अनुष्ठान पूर्वाभिमुख होकर ही किये जाते हैं। यन्त्र की पीठ पर (कागज या भोजपत्र की दूसरी ओर) अपनी समस्या (संकट) का संक्षेप में उल्लेख (संकेत) करना चाहिए। इसके बाद नई साफ रुई बिछाकर (किसी आसन पर) उस पर यन्त्र लिखित कागज रखें और बाती की तरह लपेट कर उसे जलायें। जब कागज (यन्त्र) की वह बाती जलने लगे, तब उसे किसी आधार (दीप-(दान आदि) पर टिकादें और हल्दी के 108 दानों से बनी हुई माला पर उपरोक्त चाक्षुषी बीज-मन्त्र 'ॐ ह्रीं हंसः' का 11 माला जप करें। सात रविवारों तक लगातार नियमित रूप से की गयी यह साधना समस्त भौतिक दुःखों को दूर कर देती है। किन्तु इस सारी प्रक्रिया में श्रद्धा, शान्ति और शुद्धता परम आवश्यक रहती है।

● **कार्य-सिद्धिकारक प्रयोग**— कभी-कभी ऐसा होता है कि बहुविध प्रयास करने पर भी व्यक्ति को अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में—वह यदि बत्तीसा-यन्त्र के माध्यम से सूर्योपासना करे, तो उसकी समस्त बाधाएं दूर हो जाती हैं। इसके लिए निम्नलिखित विधि से यन्त्र-साधना करनी चाहिए—

किसी शुभ रविवार के दिन प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर पूर्व-वर्णित विधि के अनुसार काँसे की थाली में हल्दी के रस और अनार की टहनी से बत्तीसा-यन्त्र की रचना करें। उसके ऊपर चार मुख वाला दीप-दान जलाकर स्थापित करदें। तदुपरान्त चन्दन-पुष्पादि से मन्त्र की पूजा करें। पूजन-क्रिया के मध्य आदि से अन्त तक मन ही मन सूर्यदेवता का स्मरण करते रहना चाहिए। यहाँ यह तथ्य स्मरण रखने योग्य है कि यह सारी पूजन-क्रिया सूर्योदय के पूर्व ही पूरी हो जाये। साधक पूर्व की ओर मुंह करके बैठे और ऐसे समय से पूजा प्रारम्भ करे कि जिस समय वह यन्त्र पर चतुर्मुख दीपक स्थापित कर रहा हो, ठीक उसी समय पूर्व दिशा में सूर्योदय हो रहा हो। दीप-स्थापना के पश्चात् यन्त्र की पूजा (चन्दन-पुष्प से) करके, उस पात्र (काँसे की थाली, जिस पर यन्त्र की रचना हुई है) को, दीपदान सहित, उठा ले और पूर्व में उदित हो रहे सूर्यदेवता की आरती करें। आरती के समय (और उसके बाद भी निरन्तर) चाक्षुषी बीज-मन्त्र का जप (ॐ ह्रीं हंसः) करते रहना चाहिए। आरती के समय उठाया गया यन्त्र-पात्र हाथ में धारण किये हुए साधक—सूर्योदय से सूर्यास्त तक बराबर सूर्य की ओर अर्घ्य देने की मुद्रा में, स्थिर रहे। ज्यों-ज्यों सूर्य

ऊपर चढ़े और फिर अस्ताचल की ओर जाय, साधक को भी उसी गति से. उसी ओर घूमते रहना चाहिए। सूर्यास्त के पश्चात् साधक कोई मीठी वस्तु खाकर, भूमि पर शयन करे। इस प्रकार यह कठोर साधना, ब्रह्मचर्य, धैर्य, श्रद्धा और शुचिता के साथ यदि कुछ रविवारों तक लगातार की जाय, यो अवश्य ही अपना चमत्कारिक प्रभाव दिखाती है। वैसे, साधना के पूर्व ही यह सङ्कल्प कर लेना चाहिए कि मैं 5, 12, 25 अथवा 42 रविवारों तक ऐसी साधना करता रहूँगा। सङ्कल्प के अनुसार धैर्यपूर्वक की गयी साधना अवश्य ही फलदायिनी होती है।

8 त्रिकाल सूर्य-स्तवन

प्रातःकालीन सूर्य-स्तुति

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं,
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादि हेतुं,
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्य रूपम् ॥ 1 ॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिः,
ब्रह्मेन्द्रपूर्वक सुरैर्नतमर्चितं च।
वृष्टि प्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं,
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ 2 ॥

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिः,
पापौघशत्रुभयरोग हरं परं च।
तं सर्वलोक कलनात्मक कालमूर्ति,
गोकण्ठबन्धन विमोचनमादि देवम् ॥

मध्याह्न (दोपहर) कालीन सूर्य-स्तुति

य उदगान् महतोऽर्णवात्,
विभ्राजमानः सलिलस्य मध्यात्।
स मा वृषभो लोहिताक्षः,
सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ॥

सायंकालीन सूर्य-स्तुति

ध्येयः सदा सवितृ मण्डल मध्यवर्ती,
नारायणः सरसिजासन संनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी,
हारी हिरण्मय वपुर्धृत शंख चक्रः ॥

सूर्याष्टक का परिचय

पौराणिक-साहित्य में देवी-देवताओं के स्तवन हेतु अष्टकों की परम्परा प्राचीन-काल से चली आ रही है। अष्टक का अर्थ होता है—आठ छन्दों में किसी देवता की स्तुति। शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, गङ्गा, दुर्गा आदि विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति हेतु अष्टकों की रचना हुई है। ऐसा ही एक सूर्य-अष्टक भी है। आठ छन्दों की यह सूर्य-स्तुति 'सूर्याष्टिक' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि यह छन्द-रचना स्वयं शिवजी ने सूर्य-स्तवन के लिए की थी। जो भी हो, यह अष्टक प्रभावशाली है, और इसका श्रद्धापूर्वक नियमित-पाठ करने से सूर्यदेवता की कृपा प्राप्त होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आज भी लाखों सूर्योपासक इसका पाठ करके लाभानुभूति कर रहे हैं। नीचे वह आठ छन्दों की सूर्य-स्तुति प्रस्तुत है :—

सूर्याष्टक के श्लोक

आदिदेव नमस्तुभ्यं, प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं, प्रभाकर नमोऽस्तुते ॥ 1 ॥

सप्ताश्व रथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेत पद्म धरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 2 ॥

लोहितं रथमारूढं, सर्वलोक पितामहम्।
महापाप हरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 3 ॥

त्रैगुण्यं च महाशूरं, ब्रह्मा विष्णु महेश्वरम्।
महापापहरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 4 ॥

बृहितं तेजः पुञ्जं च वायुमाकाश मेव च।
प्रभुं च सर्वलोकानां, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 5 ॥

बन्धूक पुष्प संकाशं, हारकुण्डल भूषितम्।
एक चक्रधरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 6 ॥

तं सूर्यं जगकर्तारं, महातेजः प्रदीपनम्।
महापाप हरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 7 ॥

तं सूर्यं जगतां नाथं, ज्ञान विज्ञान मोक्षदम्।
महापाप हरं देवं, तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 8 ॥

दैनिक रूप में सूर्यदेवता का स्तवन करने के लिए यह दोनों स्तुतियाँ बहु-प्रचलित हैं। श्रद्धापूर्वक, मात्र इन दोनों के नियमित पाठ से (जप से)

साधक को सूर्यदेव की कृपा प्राप्त हो जाती है। वैसे, आगे के पृष्ठों पर सूर्योपासना सम्बन्धी अन्य स्तुतियाँ भी यथा-स्थान प्रस्तुत हैं।

सूर्य-स्तवन

पद्मपुराण में भगवान् सूर्य की उपासना के विषय में पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला गया है। उसमें एक अति सरल, सहज-साध्य और उच्चारण में सौम्य स्तुति दी गयी है। लिखा है कि इस मन्त्र (स्तुति) का जप करने से मनुष्य अपनी समस्त अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता है। मानव-जीवन के उपरान्त उसे स्वर्ग का सुख भी सुलभ रहता है। श्रद्धा विनय-पूर्वक इस मन्त्र का दैनिक-जप साधक के लिए निश्चय ही हितकर होगा, इसमें सन्देह नहीं है। मन्त्र के श्लोक निम्नलिखित हैं :—

ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमोनमः।
नमस्ते पवन हस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमः तिमिरनाशाय श्री सूर्याय नमो नमः।
नमः सहस्र जिह्वाय, भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः।
त्वमग्निस्सर्व भूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचिन्त्वया विना।
चराचरे जगत्मस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥

त्रिकाल-संध्या कर्म में गायत्री-स्तुति

आज के व्यस्त भौतिक-युग में भी कितने ही श्रद्धालुजन दैनिकरूप में त्रिकाल-सन्ध्योपासना करते हैं। यह त्रिकाल भगवान सूर्य की गति और स्थिति पर आधारित रहते हैं। प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या— यह तीनों बेलाएं सूर्य की उदय, मध्य और अस्त स्थितियों की प्रतिरूपा हैं। अतः सूर्य भगवान की गति और स्थिति को देखकर ही वह काल निर्धारण किया जाता है। यह त्रिकाल-वेला गायत्री-साधना के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इन तीनों में यद्यपि जप का मूल-मन्त्र गायत्री तो एक ही रहता है, परन्तु समय (बेला) भेद के आधार पर गायत्री की ध्यान-स्तुतियां भिन्न-भिन्न हैं। यथा—

प्रभातकालीन गायत्री की ध्यान स्तुति

हंसारूढ़ा सिताब्जे त्वरुण मणि लसद् भूषणां साष्टनेत्रां।
वेदाख्यामक्षमालां स्त्रजभय कमलं दण्डमप्यावधानम्।
ध्याये दोर्भिश्चतुर्भिस्त्रभुवन जननीं पूर्वसन्ध्यादि वन्द्याम्।
गायत्री मृक सावित्रीमभिनव वयसं मण्डले चण्ड रश्मेः॥

विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि वेधसि ।
आवाहयाम्युदास्त्यर्थं मेहृयेनोघ्नि पुनीहिमाम् ।।

मध्याह्नकालीन गायत्री की ध्यान स्तुति

वृषेन्द्र वाहनादेवी ज्वलत् त्रिशिख धारिणी,
श्वेताम्बरधरा श्वेतनागाभरेण भूषिता ।
श्वेतस्रगक्षमालालंकृता रक्ता च शङ्करा,
जटाधर धराधात्री धरेन्द्राङ्गभवाम्भवा ।।
मातर्भवानि विश्वेशि, आहूतेहि पुनीहिमाम,

संध्याकालीन गायत्री की ध्यान स्तुति

सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती,
खगगा कृष्ण वस्त्रा तु शंखचक्र धरापरा ।
कृष्ण स्रक् भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी वरा,
वीणाक्षमौलिका चारुहस्ता स्मित वरानना ।
मातर्वाग्देवते स्तुत्ये आहूतेहि पुनीहिमाम् ।।

देवी गायत्री के जिन् पाँच मुखों की परिकल्पना की गयी है, और उनके जिन पाँच रङ्गों का वर्णन प्राप्त होता है, वे वास्तव में सूर्यमण्डल में स्थित शक्ति (देवी) के दृश्यमान (दीख पड़ने वाले) पाँच रङ्ग हैं। 'शारदातिलक' नामक ग्रन्थ में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

मुक्ता विद्रुम हेम नील धवलच्छायैमुखैंवीक्षणै—
युंक्तामिन्दु निबद्ध रत्नमुकुटां तत्वात्म वर्णात्मिकाम् ।
सावित्रीं वरदाभयां कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं,
शंखचक्रमथार विन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ।।

देवी गायत्री और भगवान सूर्य में कोई अन्तर नहीं है, वे परस्पर अभिन्न हैं, इस तथ्य के प्रतिपादन में एक और स्तुति उसी ग्रन्थ 'शारदातिलक' में प्राप्त होती है :—

हेमाम्भोज प्रवाल प्रतिमनिज रुचि चारुखट्वाङ्ग पद्मौ,
चक्रं शक्ति सपाशं सृणिमति रुचिराक्षमालां कपालम् ।
हस्ताम्भोजैर्वधानं त्रिनयनविलसद वेदवक्त्राभिरामं,
मार्तण्डं वल्लभार्द्धं मणिमय मुकुटं हारदीप्तं भजामः ।।

सूर्य-तन्त्रीय उपासना की ध्यान स्तुति

सूर्यदेवता के उपासकों का अपना एक अलग वर्ग है, जो 'सौर-सम्प्रदाय' नाम से विख्यात है। 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ उनका सर्वाधिक श्रद्धेय, प्रामाणिक और विस्तृत ग्रन्थ है। उसमें सूर्यदेवता की उपासना-पद्धति बड़े विस्तृत रूप में विवेचित है। सूर्यदेवता की उपासना के सन्दर्भ में, उक्त ग्रन्थ (सूर्य-तन्त्र) में इस ध्यान-स्तुति की बड़ी महिमा बतायी गयी है :—

भास्वद्रत्नाढ्य मौलिः स्फुरदधार रुचा रञ्जित चारु केशो,
भास्वान् यो दिव्य तेजाः कर कमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगण सहितो भाति यश्चोदयाद्रौ,
सर्वानन्दप्रदाता हरि हर नमितः पातु मां विश्व चक्षुः॥
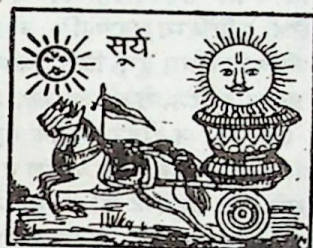
9 पौराणिक सूर्य-विवेचन

पौराणिक-परिचय

पौराणिक-मान्यता एवं ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार महर्षियों ने जो अवधारणा बनायी है, उसके आधार पर सूर्य का संक्षिप्त-परिचय इस प्रकार है :—

स्थिति-स्थान

सौर-मण्डल के प्रत्येक ग्रह की स्थिति भिन्नतापूर्ण एवं एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर है। सूर्य के विषय में यह प्रचलित है कि यह ग्रहराज आकाशमण्डल के ठीक मध्य में स्थित है। अन्य समस्त ग्रह इसके चारों ओर गोलाई में विभिन्न दिशाओं में स्थित हैं और एक निश्चित गति से सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं।

मण्डल

खगोल-शास्त्रियों ने विवेचन करके प्रतिपादित किया है कि आकृति और अवस्थिति के आधार पर समस्त ग्रहों का मण्डल एक दूसरे से भिन्न है। मण्डल को छाया-क्षेत्र, प्रतिबिम्ब, पृष्ठभूमि, ज्योति-विस्तार की सीमा में आने वाला स्थान भी कहा जाता है। जिस प्रकार रूप और आकृति में अन्तर होता है, उसी प्रकार किरण, तेज, प्रकाश, ऊष्मा और आकृति के आधार पर मण्डल भी एक जैसा न होकर, प्रत्येक ग्रह का अलग-अलग रूप में होता है। सूर्य का मण्डल वर्तुल है, यही कारण है कि चित्रों में सूर्य को गोल घेरे के रूप में देखते हैं। ब्रह्माण्ड की सीमा को नापना बहुत कठिन है, परन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि उसमें सबसे अधिक शक्तिशाली, तेजोमय, ज्वलन्त और आकार-विस्तार में बड़ा यही सूर्य है।

माप

सूर्य के आकार के विषय में खगोल-शास्त्रियों का मत है कि इस विशाल-काय ग्रह का व्यास 13,72,400 किलोमीटर है। यदि हम कल्पना करें कि सूर्य एक खोखला डिब्बा है तो उसके भीतर हम इतना स्थान

पाएंगे कि पृथ्वी की तरह के 13 लाख गोले रख सकते हैं। परन्तु पौराणिक दृष्टि से मान्यता-प्राप्त अवधारणा के आधार पर सूर्य का व्यास बारह अंगुल का है, जिसे हम बिना किसी दूरदर्शक-उपकरण के प्रातःकाल या सायंकाल देख सकते हैं।

प्रभाव-क्षेत्र

प्रत्येक ग्रह के स्वामित्व के विषय में विद्वानों में वैचारिक-मतभेद है। कुछ लोग स्वामित्व का अर्थ यह लगाते हैं कि कौन-सा ग्रह पृथ्वी के किस भू-भाग का प्रतिनिधित्व करता है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आकाशमण्डल में उदय होने पर कोई ग्रह सर्वप्रथम पृथ्वी के जिस भू-भाग पर दृष्टिगोचर होता है वही उसके स्वामित्व-क्षेत्र में आता है। अस्तु, थोड़े हेर-फेर से यह निश्चित होता है कि जिस भू-भाग से जिस ग्रह का सम्बन्ध हो, वही उसका स्वामित्व क्षेत्र है। इस दृष्टि से सूर्य का स्वामित्व-क्षेत्र कलिङ्ग देश माना जाता है।

गोत्र

जिस आदि-पुरुष की वंश-परम्परा में आगामी पीढ़ी विकसित होती है, उसी के नाम पर गोत्र की कल्पना की जाती है। प्रारम्भ में जनसंख्या बहुत कम थी, कालान्तर में परिवार बढ़ते गये और इस प्रकार सामाजिक-स्थिति में जनसंख्या का भारी परिवर्त्तन उत्पन्न हुआ। गोत्र का सामान्य आशय है कि कौन व्यक्ति किस आदिपुरुष की परम्परा में जन्मा है। इस इस नियम के अनुसार, सूर्य देवता को कश्यप ऋषि का वंशज होने के कारण कश्यप गोत्रीय मानना चाहिए। इसीलिए सूर्य-स्तुतियों में 'काश्यप' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'काश्यप' का अर्थ है—कश्यप से उत्पन्न हुआ।

वर्ण

रङ्गों की दृष्टि से सभी ग्रह भिन्न वर्णों के हैं। उनसे विकसित होने वाली रश्मियाँ भी भिन्न-भिन्न रङ्गों की होती हैं। सूर्य का वर्ण लाल है। लेकिन वह लाली सामान्य न होकर, ताम्रवर्णी है, जिसमें लालिमा के साथ-साथ हल्की गुलाबी झलक भी होती है।

राशिमण्डल में स्वामित्व

वैसे तो समस्त आकाश (ब्रह्माण्ड) सूर्य से प्रभावित है, किन्तु अवस्थिति के आधार पर विभिन्न रश्मियों का स्वामित्व अलग-अलग है।

समस्त तारा समूह बारह राशियों में विभक्त हैं और ये सभी राशियाँ नौ ग्रहों से नियन्त्रित रहती हैं। सूर्य-ग्रह को सिंह राशि का स्वामित्व प्राप्त है। आशय यह है कि आकाश में सिंह राशि के क्षेत्र में आने वाला तारा-समूह सूर्य-ग्रह द्वारा विशेष रूप से अनुशासित और प्रभावित रहता है। जिन व्यक्तियों की जन्म-राशि सिंह होती है, उनके जीवन-प्रारब्ध को सूर्य-ग्रह सबसे अधिक प्रभावित करता है।

वाहन

वाहन का अर्थ है—गतिशीलता का आधार अथवा साधन। व्यावहारिक-जीवन में गमनागमन के लिए वाहनों का प्रयोग करते हैं। ऐसी ही कल्पना ग्रहों के विषय में भी की गई है। वास्तविकता यह है कि कोई ग्रह जिन तारा-समूहों से घिरा हुआ गतिमान है, उनकी आकृति की कल्पना करके उस तारा-समूह को एक वाहन (पशु) का नाम दे दिया गया है। सूर्यग्रह के साथ गतिमान होने वाले तारा-समूहों से जिस आकृति की पृष्ठ-भूमि बनती है, उससे लगता है कि जैसे सात घोड़ों वाला कोई रथ चला आ रहा है और सूर्यदेवता उस पर आसीन हैं। इसी आकृति के आधार पर यह मान्यता प्रचलित हो गई कि सूर्यदेवता सात घोड़ों वाले रथ पर बैठकर विश्व-भ्रमण के लिए निकलते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के वाहनों की भी कल्पना की गई है। राशियों के आकार निर्धारण में भी यही कल्पना क्रियाशील रही है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर उपासक-जन सूर्यदेवता की आराधना करते समय स्तुतियों से, अथवा अन्य प्रकार से इन्हीं बिन्दुओं पर अपनी आस्था केन्द्रित करते हैं कि भगवान् सूर्य सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ हैं। उनका वर्ण लाल (ताम्रवर्ण) है, उनका मण्डल-व्यास बारह अंगुल का है और वे सिंह राशि के स्वामी हैं।

आधुनिक खगोल-शास्त्री भले ही सूर्य को देवता न मानकर, मात्र एक ज्वलन्त पिण्ड स्वीकार करें, परन्तु उसकी क्षमता और विकिरण प्रभाव को स्वप्न में भी नहीं नकार सकते। सूर्य की रश्मियों में अद्भुत और अपरिमित शक्ति है, इस सत्य को देशी-विदेशी सभी वैज्ञानिक एक स्वर से स्वीकार करते हैं।

सूर्य-मन्त्र

- **ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्न मृतं मर्त्यं च ।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन ॥**

मन्त्र-साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'वेद' हैं। यह मन्त्र वेदोक्त है। अतः वैदिक-मन्त्र होने के नाते यह सूर्य-मन्त्रों में सर्वाधिक प्राचीन और प्रभावी है।

● **जपा कुसुम सङ्काशं काश्यपेयं महत्द्युतिम्।**
तमोऽरि सर्व पापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम्॥

(जप-संख्या 28000)

इस मन्त्र की गणना अन्य मन्त्रों की तरह स्तुति-परक है। यह उच्चारण में सरल है। लयात्मक श्लोक के रूप में होने से शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाती है। सूर्यदेवता की कृपा प्राप्त करने के लिए इसका दैनिक-पाठ करना चाहिए। नियमित रूप से एक निश्चित संख्या में किया गया, इस श्लोक का पाठ अद्भुत प्रभाव की अनुभूति देता है। अनुष्ठान के रूप में प्रतिदिन एक हजार बार पाठ करके यदि सात दिनों में इसकी जप-संख्या 7000 पूरी करली जाय और आठवें दिन हवन, पूजन, दान के उपरान्त सूर्य देवता के सम्मुख प्रार्थना की जाय तो वे अवश्य ही द्रवीभूत होकर साधक का सङ्कट दूर कर देते हैं।

उपर्युक्त श्लोक के अतिरिक्त निम्नलिखित मन्त्र भी बहुत प्रभावी हैं। इनका नियमित रूप से शुद्ध उच्चारण के साथ पाठ करना बहुत कल्याणकारी होता है।

● ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः।

● ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।

तन्त्र-शास्त्र में सूर्योपासना के लिए इस मन्त्र को सर्वाधिक शक्ति-शाली कहा गया है। जप-संख्या तो 7000 ही है. परन्तु यदि कोई साधक निष्ठापूर्वक अधिक जप करले तो उसके लिए बहुत ही हितकर होगा।

● ॐ घृणिः सूर्याय नमः।

● घृणिः सूर्य आदित्य ॐ।

यह पौराणिक-मन्त्र है। सूर्यपुराण में इस मन्त्र का महत्त्व बहुत विस्तार से विवेचित है। इनके अतिरिक्त और भी कई ऐसे मन्त्र हैं, जो सूर्योपासना में सहायक सिद्ध होते हैं। साधक अपने धैर्य, ज्ञान, सामर्थ्य और अनुकूल वातावरण के आधार पर इनमें से किसी भी एक मन्त्र का नियमित रूप से विधिवत् जप करके लाभान्वित हो सकता है।

मन्त्र-साधना की विधि

विधि-विधान के सम्बन्ध में यद्यपि कहीं-कहीं मतभेद भी मिलता है, तथापि यह तथ्य सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया है कि साधना में निष्ठा, आस्था और शुचिता ही सफलता के प्रमुख स्तम्भ हैं। इन सबके साथ ही कुछ विशिष्ट सामग्री भी आवश्यक होती है। कई स्थानों पर कुछ निषेध और वर्जनाओं का भी उल्लेख किया गया है। अतः साधना का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी भी योग्य पुरोहित, पण्डित या साधना का अनुभव रखने वाले गृहस्थ से परामर्श अवश्य ले लिया जाय।

सबसे सरल और सहज-साध्य विधि यह है कि किसी भी रविवार के दिन से ठीक सूर्योदय के समय साधना प्रारम्भ की जा सकती है। फिर भी किसी पुरोहित से समय-शुद्धता का ज्ञान अवश्य कर लेना चाहिए, क्योंकि किसी भी साधना को प्रारम्भ करते समय भद्रा, पञ्चक जैसे अशुभ योग नहीं होने चाहिए। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त तो यह है कि जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र पड़ रहा हो उस दिन से साधना प्रारम्भ की जाय। इसी प्रकार अमृत-योग, सिद्ध-योग जैसे मुहूर्त्त भी उत्तम होते हैं। यथा सम्भव यही प्रयास करना चाहिए कि प्रथम रविवार के दिन, जिस दिन साधना प्रारम्भ करनी हो, किसी प्रकार का अमङ्गलकारी योग न हो। अशुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ की गई साधना (या कोई भी कार्य) निर्विघ्न रूप से पूरी नहीं हो पाती। अनेक प्रकार के विघ्न और अवरोध साधक के लिए सङ्कट उत्पन्न कर देते हैं।

किसी अच्छे रविवार का निश्चय हो जाने के बाद उस दिन प्रातः-काल स्नानादि से निवृत्त होकर, पूर्व की ओर मुंह करके, उत्तम आसन पर बैठकर सूर्यदेवता की प्रतिमा, चित्र, यन्त्र अथवा सूर्यदेवता को ही अर्घ्य देना चाहिए। तत्पश्चात् चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि से पञ्चोपचार (सामर्थ्य हो तो षोड़शोपचार) पूजन करके सूर्यदेव से यह प्रार्थना करें कि "हे सूर्यदेव ! मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ, इसमें जो भी त्रुटि हो, उसे क्षमा करते हुए, मेरी पूजा स्वीकार कीजिए।" पूजा के समय अपनी रुचि और आस्था के अनुसार किसी एक मन्त्र का मौन या मन्दतम स्वर में, शुद्ध स्पष्ट जप करना चाहिए।

अनुष्ठान के अनुसार जप की संख्या पूरी हो जाने पर (दैनिक-जप किसी शनिवार को ही समाप्त करना चाहिए)। अगले रविवार को पुनः नित्य की भाँति सूर्यदेवता का पूजन करके, उक्त मन्त्र के द्वारा आहुतियाँ

देते हुए, हवन भी करना चाहिए। हवन में सामान्य सामग्री, जौ, अक्षत, मेवा, मिश्री तथा घी का प्रयोग होता है, परन्तु काष्ठ में केवल मदार का प्रयोग करना चाहिए, अन्य काष्ठ लाभकारी नहीं होते।

साधना-काल में उपवास, फलाहार, एकाहार का बड़ा महत्त्व है। भूमि-शयन, सद्-चिन्तन, काम, क्रोधादि मनोवेगों का दमन और एकान्त वास आवश्यक है। कोई भी साधना हो ब्रह्मचर्य, शान्ति, इष्ट के प्रति अडिग आस्था और संयमित जीवन को सर्वत्र वरीयता दी गई है। एक तथ्य यह भी स्मरण रखने योग्य है कि सूर्य-पूजा में तगर (एक प्रकार का श्वेत पुष्प-विशेष) के पुष्पों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

हवन के पश्चात् सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-कन्याओं को भोजन और दक्षिणा देकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

दान आदि के लिए रविवार को सूर्योदय के समय गेहूँ, गुड़, ताम्र, सोना, लाल चन्दन, माणिक्य, तामड़ा, लाल वस्त्र, पुष्प, गौ आदि को श्रेष्ठ बताया गया है। यदि किसी कारण वश मन्त्र-जप सम्भव न हो तो स्नान के पश्चात् सूर्यनारायण की ओर मुंह करके आसन पर बैठकर स्तुतियों का पाठ करने से भी कल्याण होता है।

सूर्य-स्तवन

भगवान् सूर्य का आकाशमण्डल में आगमन ही वास्तव में सञ्चार की चेतना, प्राणशक्ति, कार्यक्षमता और सृष्टि-गति का सञ्चालन करता है, इसलिए हमारे आदि-मनीषियों ने यह व्यवस्था बतायी थी कि मनुष्य को प्रातःकाल जागने पर सर्वप्रथम भगवान् भास्कर के दर्शन एवं उनकी स्तुति करनी चाहिए, क्योंकि विश्व का प्रत्येक कण उन्हीं की शक्ति से क्रियाशील है और वही विश्व के प्राणपोषक हैं।

सूर्य-पीड़ा का प्रभाव

यदि जन्मकुण्डली में सूर्यग्रह की स्थिति प्रतिकूल हो तो व्यक्ति को कई प्रकार के कष्ट झेलने पड़ने हैं, जैसे—शारीरिक-कष्ट, मानसिक-उत्तेजना, क्रोध, अशान्ति, राजकोप, पित्तदोष, ज्वर, मिर्गी, उदर-विकार, चर्मरोग, नेत्र-पीड़ा आदि।

सूर्य यन्त्र

'यन्त्र' भी 'मन्त्रों' का ही स्वरूप होते हैं, जिनकी आकृति में सम्बन्धित देवता का वास होता है। यन्त्रों की रचना सामान्य रेखाङ्कन मात्र

न होकर, विज्ञान-सम्मत होती है। यह मानना चाहिए कि चित्र और प्रतिमा की भाँति ही रेखा-बिन्दु निर्मित यन्त्र भी किसी देवता का ही प्रतिरूप होते हैं। कुछ यन्त्र रेखा-प्रधान होते हैं, कुछ बिन्दु-प्रधान और कुछ अङ्क-प्रधान। किसी-किसी यन्त्र में बीजाक्षरों का प्रयोग किया जाता है। बीजाक्षर एक सम्पूर्ण मन्त्र होता है। अस्तु, इष्ट-साधना के लिए जिस यन्त्र का निर्देश हो, उसे वैसा ही बनाकर, उसकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

यहाँ सूर्यदेव की उपासना का एक सर्वसुलभ और सरलतम यन्त्र प्रस्तुत है। इसकी संरचना करके यदि नियमपूर्वक पूजन किया जाय तो सूर्यग्रह के समस्त दोष शान्त हो जाते हैं और शुभ प्रभाव की वृद्धि होती है।

पञ्चादश सूर्य-यन्त्र

रचना विधान

रवि-पुष्य योग के दिन भोजपत्र पर, अनार की लेखनी से, अष्टगन्ध अथवा लाल चन्दन की स्याही द्वारा इस यन्त्र की रचना की जाती है। साधक को चाहिए कि वह प्रातःकाल स्नान-पूजा से निवृत्त होकर, शुद्ध-एकान्त स्थान में, पवित्र आसन पर बैठकर, उपर्युक्त उपकरणों से इस यन्त्र की रचना करें। यह सबसे सरल, सहज और सुलभ विधि है, यों यदि सामर्थ्य हो ती इसे ताँबे या सोने के पत्र पर भी उत्कीर्ण कराया जा सकता है। धातु-पत्र पर इसकी रचना करने के पश्चात् गङ्गाजल या शुद्ध कूपजल से स्नान कराकर, पञ्चोपचार या षोड़शोपचार विधि से पूजा करनी चाहिए। पूजन के समय यन्त्र को धोकर लकड़ी के पाटे पर लाल वस्त्र बिछाकर, उस पर स्थापित करें और उसे साक्षात् सूर्यदेवता मानकर उसकी पूजा-अर्चना सम्पन्न करें।

यन्त्र लिखने से लेकर, पूजन तक अविराम गति से निरन्तर मौन-स्वर में सूर्यदेवता का स्मरण करते रहना चाहिए। इसके लिए ऊपर लिखे मन्त्रों में से कोई भी एक जप सकते हैं।

पूजनोपरान्त सूर्यदेवता की कोई भी स्तुति पढ़कर, उनसे त्रुटियों की क्षमा-याचना करते हुए, माला के आधार पर मन्त्र जपना चाहिए। जप-संख्या का सङ्कल्प पहले से ही कर लेना उचित रहता है। एक रविवार से प्रारम्भ की गई पूजा और जप को लगातार एक ही विधि से जारी रखते हुए अभीष्ट संख्या की पूर्त्ति किसी रविवार को ही की जाय। तत्पश्चात् 108 बार उसी मन्त्र की आहुतियों से हवन करके सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-बालकों को भोजन-दान दिया जाये। इस प्रकार अनुष्ठान करके यन्त्र को पूजागृह, प्रतिष्ठान, तिजोरी जैसे एकान्त और पवित्र स्थान में रख देना चाहिए। आवश्यकतानुसार ताँबे के कवच या लाल वस्त्र में लपेट कर रख सकते हैं।

विधिवत् पूजा द्वारा सिद्ध किया गया सूर्य-यन्त्र जहाँ भी रहता है, दरिद्रता, अज्ञान, भय, भ्रम और अपमान का शमन करके ओज, तेज, सौभाग्य, ज्ञान और श्री-सम्मान की वृद्धि करता है।

सूर्य रत्न

रत्नों में निःसन्देह अद्भुत और सुनिश्चित प्रभाव विहित रहता है, किन्तु किस ग्रह के लिए कौन-सा रत्न धारण किया जाये, इसका विवेचन विवादास्पद है.इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। सर्वसम्मत तथ्य यह है कि किसी मर्मज्ञ ज्योतिषी को जन्मकुण्डली दिखाकर, यह परामर्श कर लेना चाहिए कि बारहों भावों, बारहों राशियों और नवग्रहों की स्थिति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध प्रभाव की दृष्टि से कौन-सा रत्न धारण करना हितकर होगा। तभी कोई रत्न धारश करना लाभप्रद होता है। केवल इस्र आधार पर कि शनि का रत्न 'नीलम' है, तो शनि के लिए— 'नीलम' पहिन लिया जाय—यह बहुत ही भ्रामक और घातक निर्णय है।

प्रत्येक रत्न अपने ग्रह से सम्बन्धित ग्रह की रश्मियों को खींचकर उनका प्रभाव बढ़ाता हैं। ऐसी स्थिति में वह ग्रह शुभ या अशुभ, जैसा भी प्रभाव दे रहा है, रत्न धारण के उपरान्त उसी प्रभाव की वृद्धि होगी। अन्य ग्रहों का सामञ्जस्य भी इस प्रभाव को घटा-बढ़ा देता है। अतः यथा-सम्भव रत्न धारण को वरीयता न देकर, केवल स्तुति, मन्त्र-जप और यन्त्र-पूजन का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिए। यदि रत्न धारण करना आवश्यक है और इतनी सामर्थ्य है कि शुद्ध और वास्तविक रत्न खरीदा

न होकर, विज्ञान-सम्मत होती है। यह मानना चाहिए कि चित्र और प्रतिमा की भाँति ही रेखा-बिन्दु निर्मित यन्त्र भी किसी देवता का ही प्रतिरूप होते हैं। कुछ यन्त्र रेखा-प्रधान होते हैं, कुछ बिन्दु-प्रधान और कुछ अङ्क-प्रधान। किसी-किसी यन्त्र में बीजाक्षरों का प्रयोग किया जाता है। बीजाक्षर एक सम्पूर्ण मन्त्र होता है। अस्तु, इष्ट-साधना के लिए जिस यन्त्र का निर्देश हो, उसे वैसा ही बनाकर, उसकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

यहाँ सूर्यदेव की उपासना का एक सर्वसुलभ और सरलतम यन्त्र प्रस्तुत है। इसकी संरचना करके यदि नियमपूर्वक पूजन किया जाय तो सूर्यग्रह के समस्त दोष शान्त हो जाते हैं और शुभ प्रभाव की वृद्धि होती है।

पञ्चादश सूर्य-यन्त्र

रचना विधान

रवि-पुष्य योग के दिन भोजपत्र पर, अनार की लेखनी से, अष्टगन्ध अथवा लाल चन्दन की स्याही द्वारा इस यन्त्र की रचना की जाती है। साधक को चाहिए कि वह प्रातःकाल स्नान-पूजा से निवृत्त होकर, शुद्ध-एकान्त स्थान में, पवित्र आसन पर बैठकर, उपर्युक्त उपकरणों से इस यन्त्र की रचना करें। यह सबसे सरल, सहज और सुलभ विधि है, यों यदि सामर्थ्य हो ती इसे तांबे या सोने के पत्र पर भी उत्कीर्ण कराया जा सकता है। धातु-पत्र पर इसकी रचना करने के पश्चात् गङ्गाजल या शुद्ध कूपजल से स्नान कराकर, पञ्चोपचार या षोड़शोपचार विधि से पूजा करनी चाहिए। पूजन के समय यन्त्र को धोकर लकड़ी के पाटे पर लाल वस्त्र बिछाकर, उस पर स्थापित करें और उसे साक्षात् सूर्यदेवता मानकर उसकी पूजा-अर्चना सम्पन्न करें।

यन्त्र लिखने से लेकर, पूजन तक अविराम गति से निरन्तर मौन-स्वर में सूर्यदेवता का स्मरण करते रहना चाहिए। इसके लिए ऊपर लिखे मन्त्रों में से कोई भी एक जप सकते हैं।

पूजनोपरान्त सूर्यदेवता की कोई भी स्तुति पढ़कर, उनसे त्रुटियों की क्षमा-याचना करते हुए, माला के आधार पर मन्त्र जपना चाहिए। जप-संख्या का सङ्कल्प पहले से ही कर लेना उचित रहता है। एक रविवार से प्रारम्भ की गई पूजा और जप को लगातार एक ही विधि से जारी रखते हुए अभीष्ट संख्या की पूर्त्ति किसी रविवार को ही की जाय। तत्पश्चात् 108 बार उसी मन्त्र की आहुतियों से हवन करके सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-बालकों को भोजन-दान दिया जाये। इस प्रकार अनुष्ठान करके यन्त्र को पूजागृह, प्रतिष्ठान, तिजोरी जैसे एकान्त और पवित्र स्थान में रख देना चाहिए। आवश्यकतानुसार ताँबे के कवच या लाल वस्त्र में लपेट कर रख सकते हैं।

विधिवत् पूजा द्वारा सिद्ध किया गया सूर्य-यन्त्र जहाँ भी रहता है, दरिद्रता, अज्ञान, भय, भ्रम और अपमान का शमन करके ओज, तेज, सौभाग्य, ज्ञान और श्री-सम्मान की वृद्धि करता है।

सूर्य रत्न

रत्नों में निःसन्देह अद्‌भुत और सुनिश्चित प्रभाव विहित रहता है, किन्तु किस ग्रह के लिए कौन-सा रत्न धारण किया जाये, इसका विवेचन विवादास्पद है.इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। सर्वसम्मत तथ्य यह है कि किसी मर्मज्ञ ज्योतिषी को जन्मकुण्डली दिखाकर, यह परामर्श कर लेना चाहिए कि बारहों भावों, बारहों राशियों और नवग्रहों की स्थिति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध प्रभाव की दृष्टि से कौन-सा रत्न धारण करना हितकर होगा। तभी कोई रत्न धारश करना लाभप्रद होता है। केवल इन्न आधार पर कि शनि का रत्न 'नीलम' है, तो शनि के लिए—'नीलम' पहिन लिया जाय—यह बहुत ही भ्रामक और घातक निर्णय है।

प्रत्येक रत्न अपने ग्रह से सम्बन्धित ग्रह की रश्मियों को खींचकर उनका प्रभाव बढ़ाता हैं। ऐसी स्थिति में वह ग्रह शुभ या अशुभ, जैसा भी प्रभाव दे रहा है, रत्न धारण के उपरान्त उसी प्रभाव की वृद्धि होगी। अन्य ग्रहों का सामञ्जस्य भी इस प्रभाव को घटा-बढ़ा देता है। अतः यथा-सम्भव रत्न धारण को वरीयता न देकर, केवल स्तुति, मन्त्र-जप और यन्त्र-पूजन का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिए। यदि रत्न धारण करना आवश्यक है और इतनी सामर्थ्य है कि शुद्ध और वास्तविक रत्न खरीदा

जा सकता है, तो उसके पूर्व किसी सुयोग्य विद्वान् का परामर्श अवश्य ले लेना चाहिए। साधकों की आस्था का शोषण करने वाले कितने ही परामर्श-विक्रेता आज गली-गली घूम रहे हैं, ऐसे छद्म मनीषीजनों से सावधान रहना चाहिए।

सूर्यग्रह का रत्न माणिक्य है, जिसे लाल, लालड़ी तथा रूबी भी कहते हैं। यह मूल्यवान् तथा दुर्लभ रत्न है। उपरत्न के रूप में इसके स्थान पर तामड़ा (गारनेट) का उपयोग किया जा सकता है।

।। अथ सूर्यशांति ।।

आदित्यवारं हस्तेन पूर्वंज्ञात्वा विचक्षणः।
मन्त्रोक्त विधिनासर्वं कुर्यात्पूजां समाहितः ।।१।।
प्रत्येक सप्तनक्तानि कृत्वा भक्तिपरोनरः।
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।।२।।
भास्करं शुद्ध सौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः।
ताम्रपात्रे स्थापयित्वा रक्तपुष्पः प्रपूजयेत् ।।३।।
रक्तवस्त्रयुगच्छन्न छत्रोपानद्युगान्विनम्।
घृतेन स्नापयित्वाच लड्डुकान्विनिवेद्यच ।।४।।
होम घृततिलैः कुर्यादरविनाम्नाच मन्त्रवित्।
समिधोष्टोत्तरशतमष्ट विशति रेव वा ।।५।।
होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च।
मन्त्रेणानेनविदुषे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ।।६।।
आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्त सप्त दिवाकरः।
त्व रवे तारयस्वास्मानत्मात्ससारसागरात ।।७।।

10 सूर्य सम्बन्धी प्रमुख कथाएं

1. लोलार्क की कथा

एक बार भगवान शिव ने काशी का वृत्तान्त जानने के लिए सूर्य को भेजा। उन्होंने सूर्य से कहा कि वहाँ का राजा दिवोदास बहुत धर्मपरायण है। कोई ऐसा उपाय करिये, जिससे राजा के धर्म-विरुद्ध आचरण से वह नगरी उजड़ जाय, किन्तु राजा का अपमान न हो।

भगवान शिव का आदेश पाकर सूर्य ने अपना रूप बदल कर काशी की ओर प्रस्थान किया। काशी पहुँच कर उन्होंने राजा की धर्म-परीक्षा के लिए विविध रूप धारण किये। भिक्षुक और अतिथि बनकर राजा से दुर्लभ वस्तुएं माँगीं, किन्तु उनको कहीं भी राजा की त्रुटि या धर्म-विमुखता नहीं दिखायी दी।

शिवजी की आज्ञा पूरी न कर सकने के क्षोभ से मन्दराचल लौट जाने का विचार छोड़कर, काशी में ही रुकने का निश्चय किया। काशी का दर्शन करने के लिए उनका मन लोल था (लालायित था,) इसलिए उनका नाम 'लोलार्क' पड़ा। वह सङ्गम के किनारे भद्रवनी में विराजमान हैं। वाराणसी से निवास करने वाला, जो व्यक्ति लोलार्क का भजन और पूजन नहीं करता, वह क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दाद, फोड़े, फुन्सी आदि व्याधियों से ग्रसित रहता है। वह काशी में रहने वाले व्यक्तियों का योग-क्षेम वहन करते हैं। काशी में गङ्गा तथा सङ्गम के किनारे के लोलार्क आदि तीर्थों का माहात्म्य स्कन्ध-पुराण में वर्णित है :—

सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं सिरः।
लोलार्ककरनिष्टप्ता असिधार विखण्डिताः॥
काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामलाः।

2. उत्तरार्क की कथा

दैत्यों के उत्पीड़न से देवता बहुत ही त्रसित थे, बलिष्ठ दैत्यों द्वारा वह बार-बार युद्ध में परास्त हो जाते थे। दैत्यों के आतङ्क से छुटकारा

पाने में लिए उन्होंने भगवान की स्तुति की। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान सूर्य उनके समक्ष उपस्थित हो गये। देवताओं ने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा—'हे भगवन्! बलिष्ठ दैत्य बार-बार कोई न कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे हमेशा के लिए इन दैत्यों से छुटकारा मिल जाये।

समाधान सोचकर सूर्य ने उनको अपने से उत्पन्न एक शिला देते हुए कहा कि वाराणसी में विश्वकर्मा द्वारा शास्त्रोक्त विधि से मेरी मूर्त्ति बनवाओ। मूर्त्ति बनाते समय छैनी से इसे तराशने पर, जो पत्थर के टुकड़े बचें, उनसे अपने लिए अस्त्र-शस्त्र बनवाओ। इन्हीं अस्त्र-शस्त्रों से दैत्यों पर विजय पा सकोगे।

देवताओं ने वाराणसी जाकर, विश्वकर्मा द्वारा सुन्दर सूर्य-प्रतिमा का निर्माण करवाया। बचे हुए टुकड़ों द्वारा देवताओं के प्रभावी और तेजस्वी अस्त्र-शस्त्र बने। मूर्त्ति जिस जगह रखकर बनायी गयी थी, उस जगह एक गड्ढा जैसा बन गया था, उसी का नाम 'उत्तरमानस' या 'उत्तरार्क-कुण्ड' पड़ा। कालान्तर में एक बार पार्वतीजी ने शिवजी से प्रार्थना की कि 'अर्ककुण्ड' का नाम 'बर्करी-कुण्ड' हो जाय। ''बर्करी-कुण्ड मित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्।'' वर्त्तमान समय में इसी का विकृत शब्द रूप 'बकरिया कुण्ड' है, यह स्थान अलईपुरा के समीप है।

उत्तर रूप में दी गई शिला से बनाये जाने के कारण उनका नाम 'उत्तरार्क' पड़ा। उत्तरार्क का महात्म्य बहुत विलक्षण और अद्‌भुत है। पहले पौष मास के सभी रविवारों को बहुत बड़ा मेला लगता था, किन्तु सम्प्रति वह मूर्त्ति भी गायब हो चुकी है।

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणुयाच्छ्राद्धयान्विताः ।

× × ×

लभते वाञ्छितां सिद्धिमुतरार्कप्रसादतः ॥

3. *साम्बादित्य की कथा*

एक बार देवर्षि नारदजी विचरण करते हुए भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारिकापुरी पहुँचे। उन्हें देखकर सभी यादव-कुमारों ने उनको प्रणाम किया, किन्तु साम्ब ने अपने सौन्दर्य पर गर्व कर न तो उनको प्रणाम किया और न सम्मान ही किया। साम्ब का इस तरह का अशिष्ट-व्यवहार

और उसका अविनय देवर्षि को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने इस विषय में भगवान श्रीकृष्ण से भी कह दिया।

कुछ दिनों बाद नारदजी पुनः भगवान श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आये, तब भगवान श्रीकृष्ण अन्तःपुर में गोपियों के साथ बैठे थे। नारदजी ने बाहर द्वार पर खेल रहे साम्ब से अपने आगमन की सूचना भगवान श्रीकृष्ण को देने के लिए कहा।

साम्ब ने सोचा—एक बार प्रणाम न करने से ये बहुत खिन्न हुए थे, अगर आज भी इनकी आज्ञा का पालन न किया तो और भी खिन्न होंगे, शायद शाप ही दे डालें। दूसरी ओर पिताजी (श्रीकृष्ण) मातृमण्डल के साथ एकान्त में बैठे हैं, वहाँ जाना मेरे लिए अनुपयुक्त है। वह भी अप्रसन्न हो सकते हैं। लेकिन मुनि के क्रोध से पिताजी का क्रोध कहीं अच्छा है, यही सोचकर वह अन्तःपुर में चले गये। साम्ब ने दूर से ही पिताजी को प्रणाम करके नारदजी के आगमन की सूचना उन्हें दे दी। पीछे-पीछे ही नारदजी भी अन्तःपुर तक चले गये।

गोपियों को देखकर देवर्षि नारदजी ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा— 'हे भगवन्! शायद साम्ब को देखकर, उसके सौन्दर्य के कारण गोपियों में कुछ चञ्चलता का आविर्भाव हुआ है। साम्ब यद्यपि सभी गोपियों को माता तुल्य ही मानते थे, परन्तु देवर्षि नारदजी की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने साम्ब को शाप दे दिया कि तुम कुष्ठ रोग से आक्रान्त हो जाओ। क्योंकि एक तो तुम गलत समय पर मेरे पास आ गये हो, दूसरे तुमको देखकर माता सदृश गोपिकाओं में चञ्चलता का उदय हो गया है।

यह सुनकर साम्ब भय से काँपने लगे। इस भयानक रोग से मुक्त होने के लिए उन्होंने भगवान् से बहुत विनती की। पुत्र को निर्दोष जानकर भगवान ने साम्ब से कहा—'साम्ब! तुम काशी जाकर, सूर्यदेव की उपासना करो तो रोग-मुक्त हो जाओगे।' पिता की आज्ञा पाकर साम्ब ने विश्वनाथ जी के पश्चिम की ओर कुण्ड बनाकर, उसके तट पर सूर्यदेव की प्रतिमा की स्थापना की। भक्तिभाव से सूर्य की आराधना करके साम्ब ने इस भयानक रोग से छुटकारा पाया।

तभी से साम्बादित्य भक्ति-भाव से प्रार्थना करने वाले भक्त की सभी व्याधियां हरकर सम्पत्ति भी प्रदान करते हैं। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड मुहल्ले में कुण्ड के तट पर स्थित है।

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधि हरो रविः।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः॥

4. द्रौपदादित्य की कथा

प्राचीन काल में भगवान शिवजी ही पाँचों पाण्डवों के रूप में एवं पार्वतीजी यज्ञ-कुण्ड से द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई थीं और भगवान सूर्य नारायण उनकी सहायता के लिए श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए।

पाण्डव जब अपने चचेरे भाई दुर्योधन को कुटिल नीति के कारण राज्य त्याग कर जङ्गलों और पहाड़ों में इधर-उधर घूमने लगे, तब अपने पतियों की इस दारुण विपत्ति से रक्षा और उद्धार के लिए द्रौपदी ने भगवान सूर्य की आराधना की। द्रौपदी की आराधना से प्रसन्न होकर सूर्यदेव ने उसे एक कलछुल और बटलोई दी और कहा कि "जब तक तुम भोजन नहीं कर लोगी, तब तक चाहे जितने भी व्यक्ति आ जायें—सभी इस बटलोई में पके भोजन से ही तृप्त हो जायेंगे। यह सरस व्यञ्जनों की खान तथा इच्छानुसार खाद्य-वस्तुओं का अक्षय भण्डार है। परन्तु तुम्हारे भोजन कर लेने के बाद यह बटलोई खाली हो जायेगी।"

सूर्यदेव ने द्रौपदी को दूसरा यह वरदान दिया कि विश्वनाथजी के दक्षिण भाग में स्थित तुम्हारे सामने स्थित मेरी प्रतिमा की पूजा जो भी व्यक्ति करेगा, उसे कभी भी क्षुधा-पीड़ा नहीं होगी। 'द्रौपदादित्य' विश्वनाथजी के समीप अक्षयवट के नीचे स्थित हैं। काशी में 'द्रौपदादित्य' का बहुत माहात्म्य है :—

> **आदित्यकथा मेतां दौपधाराधितस्य वै।**
> **यः श्रोतयति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति॥**

5. मयूखादित्य की कथा

प्राचीन काल में पञ्च-गङ्गा के निकट 'गभस्तीश्वर' शिव-लिङ्ग एवं गौरीजी की स्थापना करके सूर्यदेव ने हजारों वर्षों तक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वयं ही तीनों लोकों को तृप्त करने वाले हैं, कठिन तपस्या के कारण और भी प्रखर हो गये। इतना अधिक प्रदीप्त सूर्य किरणों के कारण तीनों लोक व्याकुल हो उठे। भगवान सूर्य स्वयं जगत् की आत्मा हैं, रात्रि में मृतप्रायः जगत् को वही प्रातः होते ही चेतना-शक्ति प्रदान करते हैं। विश्व के समस्त व्यापारों के सञ्चालक—सूर्यदेव यदि स्वयं ही उसे जलाने के लिए उद्धृत हो उठें तो उसे कौन बचा सकता है? यही सोचकर भगवान शिव उन्हें 'वर' देने के लिए उनके पास गये।

भगवान भुवनभास्कर अपनी निश्चल समाधि में इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हें अपनी आत्मा तक का ध्यान नहीं था। उनकी यह स्थिति देख-

कर, भगवान शिव को बहुत आश्चर्य हुआ। जब भगवान शिव ने अपने वरद-हस्त से सूर्यदेव का स्पर्श किया, तो उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और भगवान शिव को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी स्तुति की।

भगवान शिव ने प्रसन्न होकर कहा—हे आदित्य ! तुमने जो मेरा और गौरी का स्तवन किया है, इन दोनों स्तवनों का पाठ करने वाले व्यक्ति को सभी प्रकार की सुख-सम्पदा प्राप्त होगी और उसे कभी कोई दुःख नहीं होगा। तपस्या करते समय केवल तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दिखायी दी थीं, शरीर नहीं। इसलिए अब तुम्हारा नाम 'मयूखादित्य' होगा। रविवार के दिन तुम्हारा दर्शन करने से दरिद्रता का नाश होगा। मयूखादित्य का मन्दिर 'मङ्गलागौरी' में है।

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभाविष्यति ।
भविष्यति न दारिद्रयं रविवारे त्वदीक्षणात् ॥

6. भगवान सूर्य का अक्षय-पात्र

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्म के अवतार थे। चाहे जितना बड़ा सङ्कट आ पड़ा हो, वह न कभी झूठ बोलते थे और न धर्म को छोड़ते थे। फिर भी भाग्यवश राजा होने के कारण द्यूत-क्रीड़ा में सम्मिलित हो गये और इसमें उन्हें अपना सर्वस्व—राज्य, धन, वैभव और सम्पदा गँवानी पड़ी। यहाँ तक कि विरोधियों ने उनको अपनी प्रियतमा द्रौपदी को भी दाव पर लगाने के लिए मजबूर कर दिया और अन्त में इसके फलस्वरूप उन्हें बारह वर्षों का वनवास भी भोगना पड़ा। महाराज युधिष्ठिर ने अपने पाँचों भाइयों तथा प्रियतमा द्रौपदी के साथ वन को प्रस्थान किया।

शौनकजी ने वनवास को जाते समय पाण्डवों से आवश्यकताओं की पूर्त्ति के विषय में त्यागी का मार्ग अपनाने के लिए कहा था, फिर भी अतिथि का स्वागत-सत्कार करना सत्पुरुष के लिए एक परम कर्त्तव्य हो जाता है। परन्तु वनों में भूखे-प्यासे भटकते हुए यह धर्म किस तरह निभ सकता है? इसीलिए महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्य ऋषि की सलाह से भगवान सूर्यदेव की उपासना में संलग्न हो गये। आदित्य भगवान के शतअष्टोत्तर नामों का जप (अनुष्ठान) नियमपूर्वक करने लगे।

महाराज युधिष्ठिर की सूर्योपासना से प्रसन्न होकर आदित्य भगवान युधिष्ठिर की मनो-इच्छा जानकर बोले—'हे धर्मराज ! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्ष तक तुमको अन्न देता

रहूँगा।' यह कहकर भगवान भास्कर ने युधिष्ठिर को अपना अक्षय-पात्र दिया, जिसमें बना हुआ अन्न अक्षय हो जाता था। वह 'अक्षय-पात्र' एक ताँबे की बटलोई थी, जिसमें पकाया हुआ भोजन तब तक अक्षय बना रहता था, जब तक कि द्रौपदी भोजन न कर लेती थीं।

'महाभारत' में इसी प्रसङ्ग के साथ लिखा है कि व्यक्ति मन को संयम में रखकर, एकाग्र होकर, युधिष्ठिर द्वारा प्रयुक्त स्तोत्र का पाठ करता है तो उसे दुर्लभ से दुर्लभ वरदान भी भगवान सूर्यदेव द्वारा प्राप्त हो जाता है।

7. स्यमन्तक-मणि की कथा

महाराज 'यदु' की वंश परम्परा में 'निघ्न, नाम के एक महान् प्रतापी राजा हुए, जिनके 'प्रसेन' और 'सत्राजित' नाम के दो पुत्र हुए। इनके दोनों पुत्र महान् योद्धा और शत्रुओं को जीतने में पूर्णतया समर्थ थे।

एक बार सत्राजित् रात्रि के अन्त में स्नान और सूर्योपस्थान के लिए समुद्र-तट पर गये। जिस समय वह सूर्योपस्थान कर रहे थे, उसी समय भगवान सूर्यदेव उनके सामने आकर खड़े हो गये। लेकिन उनके तेजस्वी मण्डल के कारण सत्राजित् स्पष्ट रूप से उनके दर्शन नहीं कर पा रहे थे, इसलिए उन्होंने कहा—'हे सूर्य देव ! यदि प्रतिदिन की तरह ही इस तेज मण्डल के मध्य आपको आज भी देखूँगा तो आपका मेरे यहाँ मित्रतावश आने में क्या विशेषता होगी।

यह सुनकर भगवान् सूर्य देव ने अपने गले से स्यमन्तक-मणि उतार कर अलग रख दी। तब राजा सत्राजित् को भगवान भुवन-भास्कर के स्पष्ट दर्शन हुए।

जब सूर्यनारायण वापस जाने लगे, तब राजा सत्राजित् ने उनसे स्यमन्तक-मणि माँग ली, उन्होंने उसे कण्ठ में धारण कर लिया और द्वारकापुरी की ओर चले गये।

जिस कुल में यह मणि रहती है, वहाँ सोने की वर्षा होती है, उस देश में मेघ समय पर वर्षा करते थे और वहाँ व्याधि का जरा भी भय नहीं था। कलियुग के लोभ और उससे उत्पन्न द्वेष तथा विरोध के भाव को दिखाने के लिए ही भगवान श्रीकृष्ण ने इस मणि के हरण की लीला की थी।

प्राचीन-काल से ही ऐसा प्रसिद्ध है कि भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी (गणेश चौथ) को चन्द्रमा का दर्शन करने से मनुष्य मात्र को चोरी

का कलङ्क लगने की सम्भावना रहती हैं। इस चन्द्र-दर्शन के दोष को दूर करने के लिए श्रीमद्भागवत के दो अध्यायों (56, 57) की कथा पढ़ने-सुनने से चोरी का कलङ्क लगने की सम्भावना नहीं रहती।

'सत्राजित् और स्यमन्तक-मणि' की कथा के फल का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण के पराक्रम से परिपूर्ण यह आख्यान समस्त पापों और कलङ्कों को दूर करने वाला है। जो इसे पढ़ता-सुनता या स्मरण करता है, वह सभी प्रकार के क्लेशों और पापों से छूट जाता है।

8. सूर्य-भक्त जरत्कारु की कथा

जरत्कारु ऋषि बहुत बड़े तपस्वी और मनस्वी थे, उन्होंने वासुकि-नाग की बहिन (नाग-कन्या) से अपना विवाह किया था। विवाह के समय ही उन्होंने नागकन्या के समक्ष यह शर्त रखी थी कि जब भी तुम कोई मुझे अप्रिय लगने वाला कार्य करोगी, उसी क्षण मैं तुम्हारा परित्याग कर दूंगा।

एक बार की बात है कि ऋषि अपनी पत्नी की गोद में सिर रखे हुए लेटे-लेटे सो गये। सूर्यास्त का समय हो गया, फिर भी ऋषि की आँखें नहीं खुलीं। ऋषि-पत्नी ने सोचा—यदि वह ऋषि को जगायेगी तो वह नाराज होकर उसका परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगायेगी तो संध्या का समय टल जायेगा। अन्त में उसने यही निर्णय किया कि पतिदेव चाहे भले ही मेरा परित्याग करदें, परन्तु उनके धर्म की रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिए। यही सोचकर, उसने पति को जगा दिया। इच्छा के विरुद्ध जगाये जाने पर ऋषि बहुत नाराज हुए और पत्नी को पूर्व-प्रतिज्ञा याद दिलाकर, उसे छोड़ने को तैयार हो गये। जब पत्नी ने उन्हें जगाने का कारण बताया तो उन्होंने कहा कि इतने दिन साथ रहने के बाद भी तुम मुझे समझ नहीं सकी हो। मैंने सन्ध्या-वेला का अतिक्रमण कभी नहीं किया है, फिर 'क्या आज सूर्यदेव बिना मेरा अर्घ्य लिए ही चले जाते ?

सत्य ही भक्त की उपासना है और दृढ़ भक्ति के आगे भगवान भी झुक जाते हैं। हठीले भक्तों के लिए भगवान स्वयं ही अपने नियम को तोड़ देते हैं।

11 सूर्यदेव के मन्दिर तथा प्रतिमाएं

देशव्यापी विभिन्न मन्दिर

सूर्य देवता को वैदिक-काल से ही देवता के रूप में प्रतिष्ठित और वर्णित किया जाता रहा है, परन्तु उस समय इनका स्थान गौण था, क्योंकि उस युग में इन्द्र तथा अग्नि का स्थान उच्च था, तथा इनको अधिक शक्तिशाली माना जाता था। आगे चलकर, सूर्य का महत्त्व अन्य देवताओं से अधिक हो गया। महाभारत के समय से ही समाज में सूर्य-पूजा का प्रचलन हो गया था। कुषाण-काल में कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्य के महान् उपासक थे। राजा कनिष्क और उनके पूर्वज सभी शिव तथा सूर्य की पूजा करते थे। इसके पश्चात् तीसरी शताब्दी में गुप्त-सम्राटों के शासन-काल में सूर्य, विष्णु तथा शिव की उपासना का उल्लेख मिलता है। कुमार गुप्त के समय में ब्राह्मण-धर्म का बहुत उत्थान हुआ और उसमें विष्णु, शिव तथा सूर्य की उपासना विशेष रूप से की जाती थी। स्कन्द-गुप्त के समय बुलन्द शहर जिले के 'इन्द्रपुर' नामक स्थान पर दो क्षत्रियों ने 'सूर्य-मन्दिर' का निर्माण भी करवाया था। गुप्त-सम्राटों के युग में सूर्य-आराधना का विशेष प्रचलन हो गया था। उनके शासक-काल में मन्दसौर, ग्वालियर, इन्दौर तथा बुन्देलखण्ड के 'आश्रमक' नामक स्थान में निर्मित चार श्रेष्ठ शिव-मन्दिरों का उल्लेख मिलता है। इन मन्दिरों के अतिरिक्त इस समय की निर्मित सूर्यदेव की कुछ प्रतिमाएं बङ्गाल में आज भी उपलब्ध हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में सूर्यदेव की उपासना का विशेष प्रचलन हो चुका था।

सातवीं ईस्वी में हर्ष के शासनकाल में तो सूर्य-पूजा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। हर्ष के पिता तथा अन्य पूर्वज न केवल सूर्य की पूजा ही करते थे, बल्कि वह आदित्य-भक्त कहे जाते थे। हर्ष के पिता का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि वह प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्नान कर 'आदित्य-हृदय' का नियमित जप करते थे। कई प्रमाणों के द्वारा यह निश्चित हो चुका है कि उस समय और सम्प्रदायों की अपेक्षा सौर सम्प्रदाय अधिक उत्कर्ष पर थी।

हर्ष-युग में प्रयाग में तीन दिन का अधिवेशन हुआ था, जिसमें पहले दिन बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी तथा दूसरे दिन सूर्य की और तीसरे दिन शिव की पूजा की गयी।

सूर्योपासना का यह प्रचार गुप्त और हर्ष के समय तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि यह ग्यारहवीं शताब्दी तक इसी तरह चलता रहा। हर्ष के बाद ललितादित्य 'मुक्तापीड़' नामक राजा भी महान् सूर्य-भक्त था, उसने सूर्य का एक 'मार्त्तण्ड-मन्दिर' भी निर्मित करवाया था, जिसके खण्डहरों से पता चलता है कि कभी वह मन्दिर बहुत विशाल तथा भव्य रहा होगा। प्रतिहार सम्राटों के युग में भी सूर्य-पूजा का प्रचलन रहा। ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास बना हुआ कोणार्क का विशाल सूर्य-मन्दिर भी उस युग की जनता की सूर्य-भक्ति का ही उदाहरण हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक-काल से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक सूर्य को अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त रहा।

सूर्य भगवान प्रत्यक्ष देव हैं। विश्व के पाँचों तत्त्वों पर उनकी छाया है। पहले भारतवर्ष में इनकी उपासना केवल मन्त्रों द्वारा होती थी, किन्तु जब सूर्य-पूजा का प्रचलन आरम्भ हुआ, तब सूर्य की प्रतिमाएं भी यत्र-तत्र स्थापित की गयीं। उत्कल-प्रदेश में सूर्योपासना का विशेष महत्त्व था। 'कोणार्क' में एक महान् सूर्य-मन्दिर है, जिसे 'कोणादित्य' कहते हैं। कोणार्क का मन्दिर भग्नावस्था में होने पर भी दर्शनीय है। अनेक विदेशी उसकी कारीगरी देखने के उद्देश्य से आज भी आते रहते हैं। इसी कारण भारत सरकार के पर्यटन-विभाग ने यहाँ पर एक होटल बनवाया है, जिसमें ठहरने की सुविधा भी उपलब्ध है।

'काश्मीर' के 'मार्त्तण्ड-मन्दिर' में भी सूर्य-प्रतिमा का भग्नावशेष मिला है। यह मन्दिर अमरनाथ-तीर्थ के मार्ग पर है।

चीनी-पर्यटकों में अनुसार पाकिस्तान में भी एक विशाल शिव-मन्दिर था, जिसका आज नाम-निशान भी कहीं नहीं मिलता।

विधर्मियों द्वारा कई मन्दिर नष्ट कर दिये जाने पर भी अनेक स्थानों पर सूर्य-मन्दिर मिले हैं, जिनमें 'अलमोड़ा का सूर्य-मन्दिर' अपना विशेष स्थान रखता है। इस सूर्य-मन्दिर में स्थापित सूर्य-प्रतिमा की अद्-भुत है। यहाँ सूर्य रथस्थ नहीं हैं, बल्कि पादाच्छन्न हैं। पैरों को देखने से ज्ञात होता है कि वे जूता पहने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रतिमा भारतीय मूर्त्ति-कला की विशेषता नहीं है। अलमोड़ा के मन्दिर से अतिरिक्त देवलास का विशाल मन्दिर तथा 'गया' का 'दक्षिणार्क' मन्दिर भी अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। धर्मारण्य के सिद्धपुर भड़ेरा तीर्थ में

भी सूर्य का विशाल मन्दिर है। 'अयोध्या','सहनिया', जयपुर के 'गल्ताजी' और 'ओसिया' का 'सूर्यदेव-मन्दिर' भी दर्शनीय हैं। अल्मोड़ा-पहाड़ की चोटी पर 'कटारमलजी के सूर्य-मन्दिर' में सूर्य-प्रतिमा कमल-पुष्प पर आसीन हैं।

'राजस्थान' अपनी 'स्थापत्य-कला' के लिए विशेष प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में 'रणकपुर' का सूर्य-मन्दिर सुरुचि-पूर्णता तथा सादी-कला के लिए विख्यात है। 'खजुराहो' मध्यप्रदेश में 85 मन्दिर हैं, उनमें सूर्य का मन्दिर अपने ढङ्ग का अनूठा एवं दर्शनीय है। खम्भात की खाड़ी के पास 'नगामा' नगर में स्थित सूर्य-मन्दिर अपनी स्थापत्य-कला के लिए प्रसिद्ध है। दक्षिण-भारत के 'कुम्भकोणम्' में शिव-मन्दिर के पास सूर्य-मन्दिर भी है।

सूर्य-पूजा की प्राचीनता के प्रमाण में 'मिश्र' में एक बहुत पुराना मन्दिर मिला है। जिसे 'फराउन बादशाह रूसेसम द्वितीय' ने 3200 वर्ष पूर्व एक पहाड़ी को काटकर बनवाया था। यह मन्दिर लगभग 110 फीट ऊँचा है। मन्दिर के पास ही 'रूसेसम द्वितीय' की 65 फीट ऊँची प्रतिमा है तथा मन्दिर में प्रधान-देवता के रूप में सूर्यदेव की विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

बिहार के 'गया' तीर्थ में 'विष्णुपद-मन्दिर' से लगभग 175 गज उत्तर में 95 गज लम्बा और 60 गज चौड़ा एक सरोवर है,जिसे 'सूर्यकुण्ड' कहा जाता है। उसके चारों ओर नीचे तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस कुण्ड का उत्तरी-भाग 'उदीची', मध्य-भाग 'कनखल' और दक्षिण-भाग 'दक्षिण-मानस' तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। तीनों स्थानों पर तीन वेदियाँ बनी हुई हैं, जहाँ अलग-अलग पिण्डदान होते हैं। सूर्यकुण्ड के पश्चिम-भाग में एक मन्दिर है, जिसमें सूर्यनारायण की चतुर्भुज-मूर्त्ति खड़ी हुई है, जिसको 'दक्षिणार्क' कहते हैं।

'विष्णुपद' के मन्दिर से लगभग आधा मील दूर 'फल्गू' नदी के किनारे गायत्री-घाट है। इस घाट पर कुल 68 सीढ़ियाँ हैं। 11 सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद गायत्रीजी का मन्दिर है। यह मन्दिर और घाट सन् 1800 ई० में 'सेठ खुशहालचन्द्र सेंधिया की धर्मपत्नी' ने बनवाया था। गायत्री-मन्दिर से उत्तर दिशा में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है। इस मन्दिर के पास ही बभकी घाट पर फलगेश्वर शिव का मन्दिर है। दक्षिण दिशा में एक मन्दिर में सूर्यनारायण की विशाल चतुर्भुजी-मूर्त्ति हैं, जिसे लोग 'गयादित्य' के नाम से पुकारते हैं।

नेपाल के पशुपत-क्षेत्र में गुह्येश्वरी का मन्दिर है, इसी मन्दिर के समीप वाग्मती नदी के पूर्वीतट पर 'सूर्य घाट' नामक एक स्थान हैं. जहाँ भगवान सूर्य का एक विशाल मन्दिर है। प्राचीन-काल का वह सूर्य-मन्दिर तो अब नष्ट हो गया है, परन्तु उसी स्थान पर एक छोटा-सा नया सूर्य-मन्दिर बनाया गया है। यहाँ प्रति माह की सप्तमी को मेला लगता हैं। इस मन्दिर का माहात्म्य है कि जो व्यक्ति इस घाट पर स्नान कर, सूर्यदेव को अर्घ्य देकर पूजन करते हैं, उसके नेत्ररोग और चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

नेपाल में ही 'भक्तपुर' के निकट सूर्य विनायक नाम की एक मूर्त्ति हैं, जो चतुर्भुज है। सिर के चारों ओर किरणें आवृत हैं। तीन हाथों में शंख, चक्र, गदा है तथा एक हाथ अभय की मुद्रा में उठा हुआ है। कहा जाता हैं कि किसी राजा ने कुष्ठरोग से छुटकारा पाने के लिए इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। राजा स्वस्थ हो गये, इसीलिए इस मन्दिर की ख्याति है।

मलतगा, कर्नाटक में 400 वर्ष पुरानी सूर्यनारायण की भव्य मूर्त्ति है, जो लगभग 2 फीट ऊँची है। इस मन्दिर में प्रतिदिन 'सूर्यसूक्त' का पाठ होता है। हनुमान-जयन्ती के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय हनुमानजी की पालकी सूर्यनारायण के मन्दिर के सामने आती हैं। सूर्य-प्रतिमा के के दायीं ओर 'जय' और वायीं ओर 'विजय' की प्रतिमाएं हैं। प्रतिमा के बीच में सूर्य देव का मुख है तथा दोनों ओर मिलाकर सात अश्वों की मूर्त्तियाँ हैं।

473 ई० में दशपुर, मालवा में रेशम बुनने वाले संघ ने एक सूर्य-मन्दिर वनवाया था। वहाँ प्राप्त एक शिला-लेख में लिखा है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने वाला शिल्पकार गुजरात से आया था।

'राजतरङ्गिणी' में मिले हुए उल्लेख से पता चलता है कि काश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड़ ने आठवीं शताब्दी में प्रख्यात मार्त्तण्ड-मन्दिर बनवाया था, जिसके अवशेष अभी तक स्पष्ट हैं।

चीनी-यात्री ह्वेनसांग ने अपने वर्णन में लिखा है कि सातवीं शताब्दी में मुलतान में सोने की मूर्त्ति वाला एक सूर्य-मन्दिर था, जो उस समय बहुत विख्यात था। 'गज़नी' के विद्वान् 'आल्वेरूनी' ने इसी मन्दिर को ग्यारहवीं शताब्दी में देखा था, उस समय इस मन्दिर में लकड़ी की सूर्य-प्रतिमा के ऊपर चपड़ा चढ़ा हुआ था। आल्वेरूनी ने इस मन्दिर का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'इस मन्दिर के पुजारी मग

ब्राह्मण हैं। विधर्मियों के भय से मुलतान के इस मन्दिर की स्वर्ण-प्रतिमा को पुजारियों ने काष्ठ में परिवर्तित करवा दिया होगा।

ह्वेनसांग के प्रवास-वर्णन में कन्नौज में भी एक सूर्य-मन्दिर होने की चर्चा है। एलोरा, भाजा और खण्डगिरि की गुफाओं में भी सूर्य की भव्य और विशाल प्रतिमाएं गढ़ी गई हैं। चौथी-पाँचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारत में सूर्य-पूजा का बहुत प्रचार रहा।

राजस्थान के 'भीनमाल' स्थान पर प्राचीन-काल के एक सूर्य-मन्दिर के अवशेष आज भी अस्तित्व में पाये गये हैं।

कच्छ के 'कन्थकोट' में नवीं शताब्दी का एक पुराना मन्दिर जीर्ण अवस्था में है।

सौराष्ट्र में थानमित्रेश्वर के पास ग्यारहवीं शताब्दी में बना हुआ सूर्य-मन्दिर है। झालावाड़ के 'चौटीला' नामक स्थान पर काठी जाति के लोगों ने अभी कुछ ही वर्षों पूर्व एक नया सूर्य-मन्दिर बनवाया है। काठी जाति के लोग सूर्य के महान् उपासक हैं। साबरमती और हाथपति के सङ्गम के निकट बीजापुर के पास सूर्य का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर को कोट्यर्क अर्थात् कोटि—अर्क (करोड़ों सूर्य) के विशेष नाम से यह एक तीर्थ-स्थल माना जाता है। यहाँ पर एक सूर्यकुण्ड भी है। यह मन्दिर लगभग नवीं शताब्दी से भी पहले बनाया गया था, परन्तु जीर्णोद्धार द्वारा इसकी स्थिति अब काफी बदल गई है। फिर भी जहाँ कहीं भी उसका असली रूप दिखायी देता है, वह इस मन्दिर की प्राचीनता की साक्षी देता है।

ग्यारहवीं शताब्दी में बना हुआ, उत्तरी-गुजरात का विश्व-विख्यात 'मोढेरा' का सूर्य-मन्दिर है, यह मन्दिर मोढ़ बनियों और मोढ़ वैष्णवों के इष्टदेव का स्थान माना जाता है। यह मन्दिर साधारण ढङ्ग का बना हुआ होने पर भी बहुत विशाल है। मोढेरा के सूर्य-मन्दिर की तरह ही पूर्व में उड़ीसा में कोणार्क का विशाल मन्दिर है। इसे वहाँ के राजा ने बारहवीं शताब्दी में बनवाया था। इस मन्दिर को बनाने वाले शिल्पी के बारे में वहाँ के लोग कहते हैं कि वह भी दैवी था। मन्दिर बनाने के बाद वह समुद्र पर चलता हुआ उस पार चला गया था। पुराणों में इस क्षेत्र को 'कोणार्क-तीर्थ' कहा गया है। इसके दक्षिण में दो मील दूर पर ही बङ्गाल की खाड़ी है तथा उत्तर में आधे मील पर चन्द्रभागा नदी है। खुले हुए गर्भगृह की अब केवल दीवालें खड़ी हैं। मण्डप के ऊपर का भाग तोड़ दिया गया है। गर्भगृह बीस फुट का समतल मैदान है। मूर्ति के

स्थान पर सात अश्वों ये युक्त सिंहासन है। मन्दिर में अनेक सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं, जो काले पत्थर से बनी हुई हैं, इसकी ऊँचाई 6 फुट से भी अधिक है। मन्दिर को रथ का आकार दिया गया है, इसके पहियों का व्यास पौने दस फुट हैं।

भारत के पूर्व में 'कोणार्क' पश्चिम में 'मोढेरा' का मन्दिर विश्व-विख्यात है। इसी तरह काश्मीर का 'मार्त्तण्ड-मन्दिर' भी बहुत विशाल था, लेकिन विधर्मियों के हाथों यह प्रायः नष्ट हो चुका है। विधर्मियों ने इसे इस तरह नष्ट किया है कि अब वह देखने लायक नहीं रहा। काश्मीर के मन्दिरों की रचना अन्य मन्दिरों से भिन्न है!

राजस्थान के जोधपुर और मेवाड़ की सरहद पर जैन-मन्दिरों का समूह है, इसके पास दक्षिण में अष्टभद्रयुक्त सुन्दर, कलात्मक सूर्य-मन्दिर है। देखभाल के अभाव में और बहुत समय तक अपूज्य रहने के कारण यह मन्दिर जर्जरित हो गया है। शिखर और मण्डप में कई सूर्य-प्रतिमाएं खुदी हुई हैं। कक्षासन के स्थान पर खड़े हुए घोड़े भी खुदे हुए हैं। मन्दिर अखण्डित है, परन्तु जीर्णोद्धार के बिना उपेक्षित-सा है।

प्राचीन काल में प्रभास-क्षेत्र, सोमनाथ में छोटे-बड़े कई सूर्य-मन्दिर थे, जिनके अवशेष आज भी वहां पर इधर-उधर मिलते हैं। वर्त्तमान समय में भी वहाँ पर दो बहुत बड़े सूर्य-मन्दिर हैं, जिनकी हालत भी जीर्ण-शीर्ण है। त्रिवेणी पर बने हुए सूर्य-मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया गया है, परन्तु किसी अज्ञानी शिल्पी द्वारा बनाने जाने के कारण उसके ऊपर का भाग विकृत हो गया है। यह सूर्य-मन्दिर पूर्वाभिमुख है. गर्भगृह बिना मूर्त्ति का खाली ही है। उसकी पीठ की ग्रास-पट्टी के स्थान पर अश्व बनाया गया है, लेकिन मन्दिर बहुत विशाल है।

प्रभास के पूर्व-ईशान में शीतला नामक स्थान पर हिरण्य-नदी के किनारे साधार प्रासाद की शैली पर आधारित एक सूर्य-मन्दिर है। उसका शिखर और मण्डप के ऊपर का भाग नष्ट प्रायः हैं, परन्तु मन्दिर की कलात्मकता दीवालों द्वारा देखी जा सकती है। गर्भगृह में इसमें भी कोई प्रतिमा नहीं है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है, जब कि सूर्य-मन्दिर अधिक-तर पूर्वाभिमुख होते हैं। इसकी पीठिका में ग्रास-पट्टी के स्थान पर अश्व बने हुए हैं।

प्रभास-क्षेत्र में सूर्य के बारह विशाल मन्दिरों का प्रमाण पुराणों में मिलता है। उनमें से केवल दो बड़े-बड़े सूर्य-मन्दिर खण्डित अवस्था में मिले हैं।

विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य के साथ हुआ था, किन्तु सूर्य का तेज न सह सकने के कारण वह प्रभास-क्षेत्र में अपने मायके चली आयीं। फिर सूर्य भी संज्ञा को खोजते हुए प्रभास-क्षेत्र में आये और तभी उन्होंने अपनी बारह कलाओं की स्थापना वहाँ पर की, यही सूर्य-मन्दिर इसके प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

सूर्य ने बारह मूर्त्तियों द्वारा स्वयं को सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त कर रखा है। इन्द्र,धाता,पर्जन्य,त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु,अंशुमान, वरुण और मित्र आदि सूर्य के बारह रूप हैं। भगवान सूर्य की प्रथम मूर्त्ति का नाम 'इन्द्र' है, वह प्रतिमा देवराज के पद पर प्रतिष्ठित है और शत्रुओं का नाश करने वाली है।

भगवान् के दूसरे विग्रह का नाम 'धाता' है, जो प्रजापति के पद पर आसीन है और भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्गों की सृष्टि करते हैं।

सूर्यदेव की तीसरी प्रतिमा 'पर्जन्य' के नाम से विख्यात है, जो बादलों में स्थित होकर वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रह का नाम 'त्वष्टा' है, जो सम्पूर्ण वनस्पतियों और औषधियों में स्थित है।

पाँचवीं प्रतिमा 'पूषा' के नाम से विख्यात है, जो अन्न में स्थित है और मानव तथा प्राणिमात्र को हमेशा पुष्ट करती है।

सूर्यदेव की छठी प्रतिमा का नाम 'अर्यमा' है, जो वायु में स्थित होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त रहती है। सूर्यदेव का सातवाँ विग्रह 'भग' के नाम से विख्यात है। यह ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण देहधारियों के शरीर में स्थित रहती है।

सूर्य देव की आठवीं प्रतिमा 'विवस्वान' नाम से प्रसिद्ध है, जो अग्नि में स्थित होकर जीवों द्वारा खाये हुए अन्न को पचाती है।

उनकी नवीं प्रतिमा 'विष्णु' के नाम से विख्यात है, जो देव-शत्रुओं का नाश करने के लिए अवतार लेती है।

सूर्य की दसवीं प्रतिमा का नाम 'अंशुमान' है, जो वायु में प्रतिष्ठित होकर समस्त विश्व का कल्याण करती है।

सूर्य का ग्यारहवाँ स्वरूप 'वरुण' के नाम से प्रसिद्ध है, जो जल में प्रतिष्ठित होकर विश्व का पोषण करता है।

सूर्यदेव के बारहवें विग्रह का नाम 'मित्र' है, जिसने सम्पूर्ण लोकों का हित करने के लिए चन्द्रा नदी के तट पर स्थित होकर महान् तपस्या की थी।

सूर्यदेव ने अपने इन्हीं बारह स्वरूपों द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् को अपने में व्याप्त कर रखा है।

चैत्र मास में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान, आषाढ़ में अंशुमान, श्रावण में पर्जन्य, भादों में अरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नामों वाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मों से आत्म-स्वरूप सूर्य सम्पूर्ण विश्व को बारह मास, छः ऋतुओं में विभक्त करते हुए एक सूत्र में बाँधे रहते हैं।

भगवान सूर्य के इन नामों का वैज्ञानिक-महत्त्व है, केवल परम्परा निर्वहण के लिए ही यह नामकरण या सूर्यदेव की अनेकानेक प्रतिमाओं और विग्रहों का वर्णन नहीं है। संसार का सम्पूर्ण भौतिक-विकास सूर्य की सत्ता पर निर्भर है। सूर्य की शक्ति के बिना पौधे नहीं उग सकते, वायु और जल की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस सम्पूर्ण प्रकृति का केन्द्र स्वयं सूर्य हैं।

कोणादित्य की महिमा

दक्षिण-समुद्र के किनारे ओण्ड्रदेश में भगवान सूर्य 'कोणादित्य' के नाम से विख्यात हैं। जिनके दर्शन करने मात्र से ही व्यक्ति सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

यहाँ कोणादित्य का विस्तार सभी ओर से एक योजन से भी अधिक है। उस जगह पर माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को संयमपूर्वक उपवास करना चाहिए। प्रातःकाल सूर्यदेव को स्मरण करते हुए विधि-पूर्वक समुद्र में स्नान करके तर्पण करें। बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक समुद्रतट पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाएं। लाल चन्दन और जल से ताँबे के पात्र में एक अष्टदल-कमल की गोलाकार आकृति का बनाएं। फिर तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल फूल और कुशा उस पात्र में रख दें। तांबे का पात्र न मिले तो मदार के पत्ते का दोना बनाकर उसमें पूजन करें। पूजा के पात्र को दूसरे पात्र से ढँक देना चाहिए। फिर भावयुक्त श्रद्धापूर्वक सूर्यदेव को अर्घ्य दें।

षष्ठी या सप्तमी को एक समय भोजन करके जो नियमपूर्वक व्रत का पालन करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। जो षष्ठी या

सप्तमी को दिन-रात उपवास करके भगवान भास्कर का पूजन करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

यदि शुक्लपक्ष की सप्तमी को रविवार हो तो उस दिन विजया-सप्तमी होती है। इस विजया-सप्तमी को किया गया दान महान् फल देने वाला होता है। इसमें किया हुआ तप, स्नान, दान होम और उपवास बड़े-बड़े पातकों का नाश करता है। सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टी से सूर्यदेव के मन्दिर को लीपने से मनवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है। जो तिल के तेल से दीपक जलाकर सूर्य की पूजा करता है, वह कभी अन्धा नहीं होता। दीपदान करने वाला मनुष्य सदा ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित रहता है। देव-मन्दिर, चौराहों और सड़कों पर दीपदान करने वाला व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है। दीपक की लौ की तरह ही दीपदान करने वाला व्यक्ति भी सदैव उच्च शिखर पर बढ़ता जाता है। दीप-हर्त्ता मनुष्य नरक (दुःख) को प्राप्त होता है।

उदय-काल में प्रतिदिन सूर्य को अर्घ्य देने से एक ही वर्ष में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्य की ओर मुँह करके किसी मन्त्र या स्तोत्र का जप करना 'आदित्य-व्रत' कहलाता है, इस व्रत को करने से बड़े-से-बड़े पातकों से भी छुटकारा मिल जाता है।

भगवान भास्कर की कृपा से सभी प्रकार के पापों से छुटकारा मिल जाता है। सूर्यदेव के एक दिन के पूजन से जो प्राप्त हो जाता है, वह सैकड़ों यज्ञों का अनुष्ठान करने पर भी दुर्लभ है।

卐

12 शिक्षाप्रदाता सूर्य

सम्पूर्ण विश्व में जीवन और गति के महान् प्रेरक, प्रकाश फैलाकर लोगों को सत्य का ज्ञान देने वाले, अचेतनता में भी चेतना का प्रसार करने वाले सूर्य द्वारा कर्मयोग और वेदों की शिक्षा दी गयी है। यह तथ्य भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। मनु, याज्ञवल्क्य और साम्ब जैसे विद्वान् और मनीषी भी सूर्य द्वारा ही शिक्षित हुए। तीनों लोकों के गुरु भगवान शिव जब हनुमान के रूप में अवतरित हुए थे, तब वह भी विद्याध्ययन के लिए भगवान सूर्य के ही पास गये थे।

भगवान सूर्य और हनुमानजी के मध्य गुरु-शिष्य सम्बन्ध का प्रारम्भ बहुत ही रहस्यात्मक ढङ्ग से हुआ था। एक बार बचपन में हनुमानजी क्षुधा (भूख) लगने के कारण उदय होते हुए सूर्य को ही निगल गये। उस दिन अमावस्या थी, सूर्यग्रहण पड़ने वाला था। हनुमानजी के डर से राहु इन्द्र के पास शिकायत करने गया। ऐरावत पर चढ़कर सुरपति इन्द्र हनुमानजी के पास पहुँचे, लेकिन हनुमानजी तो इतने भूखे थे कि राहु और ऐरावत को भी कोई फल समझकर निगलने के लिए दौड़े। इन्द्र ने क्रोधित हो अपनी रक्षा करते हुए हनुमानजी पर वज्र-प्रहार किया, जिससे कुछ क्षणों के लिए हनुमानजी मूर्च्छित हो गये। इन्द्र का यह कृत्य देखकर पवनदेव ने दुःखी होकर अपनी गति ही रोक ली, जिससे तीनों लोकों में हाहाकार मच गया।

उस समय सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से अवध्यता का वरदान दिया। सूर्य ने भी अपने तेज का कुछ भाग हनुमानजी को देते हुए उन्हें विद्वान् बना देने का आश्वासन दिया। यथा—

मार्त्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः।
तेजोसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम्॥
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रम् दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति॥

इन परिस्थितियों में सूर्य द्वारा हनुमानजी को शिक्षा देने का आश्वासन देना विचारणीय है। उन्होंने यही वर क्यों दिया ? वह भी तो अन्य देवताओं की तरह अन्य वरदान दे सकते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि हनुमानजी ज्ञानार्जन के लिए ही उनके पास गये थे।

ज्ञान ही सम्पूर्ण जीवन का फल है और सूर्य स्वयं ज्ञान के स्वरूप है, अतः ज्ञानरूपी फल की प्राप्ति के लिए ही वह सूर्य तक उड़कर पहुँचे। उनके भावों की शुद्धता देखकर ही सूर्य ने उन्हें नहीं जलाया—

शिशुरेव त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।
कार्यं चास्मिन समायत्तमित्येवं न ददाह सः ।।

सम्पाती भी सूर्य के पास तक उड़कर पहुँच गये थे, परन्तु उनकी यह उड़ान अभिमान पूर्ण थी, जिसके परिणाम-स्वरूप उनके पंख जल गये। इसके विपरीत हनुमानजी की भूख, उनकी उड़ान शुभेच्छापूर्ण थी। वह सम्पाती की तरह मान के नहीं, ज्ञान के भूखे थे। इसीलिए उन्हें सूर्य की अनुकूलता प्राप्त हुई और विद्या देने का आश्वासन भी मिला।

राहु के लिए ज्ञान-स्वरूप सूर्य भक्षणीय हैं, जब कि हनुमानजी के लिए निगल लिए जाने पर भी सुरक्षणीय, अर्थात् मुखस्थ-ज्ञान पाने के लिए ही उन्होंने सूर्य को मुख में रख लिया था। जातीय-स्वभाव के अनुसार भी महत्त्वपूर्ण वस्तु के लिए उनके पास मुख से अधिक सुरक्षित-स्थान कौन-सा हो सकता है ? सीता-खोज के समय भगवान श्रीराम की मुद्रिका भी वह मुंह में ही रखकर ले गये थे।

ज्ञान प्राप्त करने वालों के समक्ष कई कठिनाइयाँ आती हैं, कई विपदाएं आती हैं, परन्तु सच्चा साधक कभी भी इनके सामने रुकता नहीं। इन्द्र की भूमिका भी यही है, लेकिन हनुमानजी के अदम्य साहस और ज्ञान की प्रबल इच्छाशक्ति के सामने उनका घमण्ड टूट जाता है।

इन्द्र का वाहन 'ऐरावत' 'लोभ' का और 'राहु' प्रमाद का प्रतीक है। यह दोनों रजोगुणी और तमोगुणी प्रवृत्तियाँ ज्ञान की बाधक हैं। प्रमादी व्यक्ति केवल शरीर-सुख को परमोच्च फल मानकर ज्ञान और विद्या को केवल उदर-पूर्ति का साधन मात्र मानता है। दूसरी ओर लोभी स्वयं अपने दृष्ट-अदृष्ट सुख को जीवन का सार मानकर उसके लिए प्रयत्नशील रहता है। इस तरह लोभ और प्रमाद दोनों एक दूसरे के सहायक हैं, इसीलिए ऐरावत राहु की सहायता के लिए आता है। ज्ञान चाहने वाले साधक को इन दोनों बुराइयों से दूर रहना चाहिए, इसीलिए हनुमानजी ने दोनों को भयभीत कर दिया।

इन सारी विपदाओं को पार करने के बाद अध्ययन-कार्य प्रारम्भ हुआ। हनुमानजी की अध्ययन-शैली और बुद्धि अद्‌भुत है, सराहनीय है :—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्,
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्‌गिरेरस्तगिरिं जगाम,
ग्रन्थं महद्धारयन प्रमेयः॥

अर्थात्—व्याकरण सीखने के लिए हनुमानजी महाग्रन्थ याद करते हुए उदयाचल से अस्ताचल तक चले जाते थे।

कितना अद्‌भुत था, यह पढ़ने-पढ़ाने का ढङ्ग। सूर्य भगवान् सम्पूर्ण वेदों और विद्याओं के रहस्यों को समझाते चलते थे और हनुमानजी उसी गति से सब कुछ कण्ठस्थ करते चले जाते थे। कोई भी शास्त्र उनके अध्ययन में नहीं छूटा। यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं,
ससंग्रहं सिद्‌ध्यति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित सदृशोऽसि शास्त्रे,
वैशारदे छन्दगतो तथैव॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने,
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुम् सुराणाम।

"हनुमानजी ने तत्कालीन सूत्र, वृत्ति, वार्त्तिक और व्याकरण के अलावा महाभाष्य का ज्ञान प्राप्त कर उसमें सिद्धि प्राप्त की। उनके समान सभी शास्त्रों का पण्डित और कोई नहीं। समस्त विद्याओं में वह गुरु बृहस्पति के समान हैं।"

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हनुमानजी को रामचरित-मानस में 'ज्ञानिनामाग्रगण्यं' और 'सकलगुणनिधानं' माना है। भगवान श्रीराम और हनुमानजी की पहली मुलाकात में हुए वार्त्तालाप के द्वारा ही श्रीराम उनसे बहुत प्रभावित होते हैं। उनकी विद्वता, ज्ञान और वाक्‌पटुता की प्रशंसा करते हुए वह लक्ष्मणजी से कहते हैं :—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः,
नासामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।
नूनं व्याकरणम् कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्,
बहु व्यवहार तानेन न किंचिदपशब्दिम्,।

अर्थात्—"जिसे ऋग्वेद की शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेद का

अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेद का ज्ञाता नहीं हो, वह इस तरह नहीं बोल सकता। इन्होंने निश्चय ही व्याकरण का कई बार अध्ययन किया है, क्योंकि इतनी बातें बोलने के बाद भी इनके मुख से अशुद्ध शब्द नहीं निकले।"

जिस समय सीताजी की खोज करने के लिए वह लङ्का की यात्रा करते हैं, उस समय देवता उनके बुद्धि-बल की परीक्षा लेने के लिए 'सुरसा' को भेजते हैं, लेकिन उस महान् विघ्नरूपी परीक्षा में भी उनकी बुद्धि परिलक्षित होती है। लङ्का में भी उन्होंने अपनी बुद्धिमानी का परिचय कुछ इस तरह दिया कि रावण के पक्ष के ही सभी लोग यहाँ तक कि उसका भाई, पत्नी, पुत्र, समीपस्थ सचिव भी उन्हीं का समर्थन करने लगे। हनुमानजी की यह बौद्धिक-सफलता, उनके गुरु का आशीर्वाद और उनकी शिक्षा का प्रसाद था। उनके सभी कार्यों द्वारा उनकी विद्या-बुद्धि की विलक्षणता का आभास मिलता है। साथ ही, दिखायी देती है, सूर्य की शिक्षा की सफलता।

अध्ययन की पूर्णता के बाद गुरु-दक्षिणा का भी विधान है, इसीलिए हनुमानजी अपने गुरु से गुरु-दक्षिणा के लिए निवेदन करते हैं। निष्काम-भाव से शिक्षा देने वाले सूर्यदेव अपने अंश से उत्पन्न सुग्रीव की रक्षा करने की कामना व्यक्त करते हैं। हनुमानजी गुरु की इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसे पूर्णता देने के लिए सुग्रीव के पास जा पहुँचते हैं :—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः॥

गुरु की इच्छा जानकर, वह सुग्रीवजी के साथ छाया की तरह रहे और हमेशा सुरक्षा और सेवा के लिए तत्पर रहे। श्रीराम के राज्याभिषेक के बाद, समस्त बानरों की विदाई हो जाने पर वह सुग्रीवजी से भगवान श्रीराम के पास दस दिन तक और रहकर चरण-सेवा करने के लिए छोड़ जाने की प्रार्थना करते हैं। उनके भक्तिभाव को देखकर सुग्रीवजी सहर्ष उन्हें श्रीसीता-रामजी के चरणों की सेवा के लिए आज्ञा दे देते हैं।

क्योंकि सुग्रीवजी तब पूर्ण स्वतन्त्र, निर्भय और सुरक्षित थे।

●

13 सूर्य का स्वास्थ्य पर प्रभाव

"आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ।"

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रियों ने सूर्य की स्वास्थ्य-प्रदायिनी शक्ति का अनुभव किया और देशी-विदेशी चिकित्सकों ने इस विषय पर कई ग्रन्थ लिखे। अँग्रेजी की कहावत है—(Light is iife and daıkness is death) अर्थात्—प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार मृत्यु।

जिस जगह पर सूर्य का प्रकाश पहुँचता है. वहाँ रोग के कीटाणु स्वतः ही मर जाते हैं। सूर्य की किरणों द्वारा अनेक प्रकार के पोषक-तत्त्वों की वर्षा होती है, जिनके द्वारा असाध्य-रोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने चिकित्सा की दृष्टि से सूर्य का अनेक प्रकार से प्रयोग किया हैं। सूर्य के प्रकाश में सात रङ्गों की रश्मियाँ होती हैं—लाल, हरी, पीली. नीली, नारङ्गी, आसमानी और कासनी, प्रकाश के साथ-साथ इन रङ्गों तथा तत्त्वों की वर्षा भी हमारे ऊपर होती रहती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि 'यदि सूर्य न हो तो हम जीवित नहीं रह सकते।' वेदों में सूर्य-पूजा के विधान का मुख्य कारण यही है। आदि-काल में ग्रीक और यूनानी लोग भी सूर्य-चिकित्सालय बनवाने के साथ-साथ सूर्य की पूजा भी करते थे। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का प्रथम उपासक 'हिप्रोक्रेट्स' भी सूर्य-चिकित्सा द्वारा रोगियों को ठीक किया करता था।

सर्वप्रथम डेनमार्क के निवासी डॉ० नाइस फिसेन ने 1293 ई० में सूर्य के महत्त्व को प्रकट कर 1295 ई० में एक क्षय-रोग के रोगी को ठीक किया। किन्तु डॉ० फिसेन की 43 वर्ष की अवस्था में असामयिक मृत्यु हो गई। अन्य कई वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में नयी खोजें कीं, जिनके परिणाम-स्वरूप चिकित्सा-जगत् में 'सूर्य-चिकित्सा' अपना विशेष स्थान रखने लगी। डॉ० ए० जी० हार्वे तथा डॉ० एल्फ्रेड वरालियर ने बड़े-बड़े सैनेटोरियम स्थापित किये।

इसके बाद 'क्रोमोपैथी' का जन्मा हुआ और वैज्ञानिकों ने खोज की कि शरीर में किसी विशेष रङ्ग की कमी से कुछ रोगों का जन्म होता है

और उसी रङ्ग की बोतल में तैयार जल तथा उसी रङ्ग के प्रकाश में रखने से वे रोग दूर हो सकते हैं। डॉ० आर० डी० स्टकर, डॉ० ए० ओ० ईब्स तथा डॉ० डेविट आदि ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 'भारत' जैसे एक गरीब देश के लिए यह चिकित्सा-पद्धति बहुत ही उपयोगी और आवश्यक है, परन्तु 'क्रोमोपैथी' द्वारा वही डॉक्टर रोगियों को लाभ पहुँचा सकता है, जिसे उस विषय का पूरा ज्ञान हो। उचित ज्ञान न होने पर हानि की सम्भावना है।

क्षय (टी. वी.), लकवा, पोलियो, कैन्सर जैसे असाध्य रोगों में भी विधिवत् सूर्य-स्नान करने से अद्‌भुत लाभ होता है। कई बार स्थानीय रूप में भी सूर्य की किरणों का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् शरीर के किसी एक हिस्से को धूप में रखा जाता है, परन्तु इसके लिए किसी चिकित्सक का परामर्श लेना आवश्यक है।

'सूर्य-किरण चिकित्सा-प्रणाली' के अनुसार अलग-अलग रङ्गों के अलग-अलग गुण होते हैं। लाल रङ्ग उत्तेजना पैदा करता है और नीला रङ्ग शान्ति पैदा करता है। इन रङ्गों से लाभ उठाने के लिए रङ्गीन बोतलों में छः या आठ घण्टे तक लकड़ी के पाटों पर कुएं या नदी का शुद्ध जल भरकर धूप में रखा जाता है। इस जल में बोतल के रङ्ग का प्रभाव आ जाता है। इस जल की दो-दो तोले की खुराक दिन में तीन बार ली जाती है। एक दिन का शोधित जल तीन दिन तक काम दे सकता है। परन्तु बोतल को किसी अन्य प्रकाश में अथवा जमीन पर नहीं रखना चाहिए। जल की तरह ही, तेल भी एक महीने तक धूप से रखकर तैयार किया जाता है।

प्रत्यक्ष रूप से भी सूर्य-किरणें मानव-जीवन को प्रभावित करती हैं। रङ्गों का समूह, जो हमारे वातावरण को बनाता, उसे किरणों द्वारा ही स्वरूप मिलता है। रङ्गों के प्रति जो हमारी प्रतिक्रियाएं होती हैं, वह महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे हम लोगों के न केवल शरीर को प्रभावित करती हैं, बल्कि उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हम पर पड़ता है। प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि नीले रङ्ग का प्रभाव ठण्डा होता है। लाल रङ्ग से उष्णता और तेज रङ्ग से काम करने की स्फूर्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रङ्ग का जो भावात्मक प्रभाव पड़ता है, उसी आधार पर चिकित्सा का सिद्धान्त बनाया गया है। मन अगर स्वस्थ हो तो उसका प्रभाव हमारे शरीर पर प्रत्यक्ष पड़ता है।

इस पद्धति के उपचार में नीले रङ्ग के प्रयोग से बुखार, पुरानी

पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, खाँसी, श्वास, सिर-दर्द, गर्मी, प्रमेह आदि में लाभ होता है। लाल रङ्ग के प्रयोग से समस्त वात-व्याधियाँ, पीले रङ्ग के प्रयोग से उदर-रोग, हरे रङ्ग से त्वचा-रोग और करीब-करीब सभी रोग नष्ट हो सकते हैं।

तेल, शर्करा, दिव्य जल और गोलियाँ निर्मित करने की विधि—इस पद्धति के अनुसार उपचार करने के लिए रोगानुसार विभिन्न रङ्ग की बोतलें लेनी चाहिए, जो स्वच्छ और पारदर्शी हों, उन बोतलों में उसी रङ्ग का कार्क या ढक्कन लगाएं। स्वच्छ जल को बोतल में चार अंगुल खाली रखकर भरलें। फिर बोतल को ढक्कन से ठीक प्रकार बन्द करके ऐसे स्थान पर रखें, जहाँ सुबह के 10 बजे से शाम के 5 बजे तक सूर्य-किरणें अबाध गति से पड़ती रहें। बोतल को उसी रङ्ग के कागज से लपेट कर रखना चाहिए। यह सब वस्तुएं अप्रैल से जून तक ही तैयार करना चाहिए।

Early To Bed And Early To Rise
Makes A Man Healthy, Wealthy And Wise.

---

14 सूर्य नमस्कार व योग

प्रभात की पावन बेला में किसी भी गार्डन, नदी किनारे या खुले स्थान में या छत पर 'सूर्य नमस्कार' प्रतिदिन करें। सूर्य नमस्कार सात आसनों का मिश्रण है। इससे सारा शरीर प्रभावित होता है। आमाशय, यकृत, फेफड़े, गुर्दे, पित्त, क्लोम ग्रन्थि, पैरा थायरेड ग्रन्थि तथा छोटी-बड़ी आंतों को बल मिलता है। मृत्यु पर विजय पाने की तो हम गारन्टी नहीं करते, परन्तु हमारी प्राचीन भारतीय सूर्य नमस्कार व योग प्रणाली का नित्यप्रति दस-पन्द्रह मिनट अभ्यास करके प्रत्येक स्त्री-पुरुष पूरे एक सौ वर्ष तक परमपिता परमेश्वर के दिये हुए अमानती शरीर की रक्षा कर सकता है।

सूर्य नमस्कार के 12 मन्त्र

1. ॐ मित्राय नमः	2. ॐ रवये नमः	3. ॐ सूर्याय नमः
4. ॐ भानवे नमः	5. ॐ खगाय नमः	6. ॐ पूष्णे नमः
7. ॐ हिरण्यगर्भाय नमः	8. ॐ मरीचये नमः	9. ॐ आदित्याय नमः
10. ॐ सवित्रे नमः	11. ॐ अर्काय नमः	12. ॐ भास्कराय नमः

ॐ श्रीसवितृसूर्यनारायणाय नमः

इन सब मन्त्रों में सूर्य देवता के नामों का गुणगान है। सूर्य से हमें शक्ति व जीवन मिलता है। सूर्य की रोशनी में खुले बदन सूर्य-नमस्कार व्यायाम करने का विशेष लाभ है।

'पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर' ने सूर्य नमस्कार, योगासन तथा प्राणायाम द्वारा शतायु प्राप्त की थी।

सूर्य नमस्कार

'सूर्य नमस्कार' का अर्थ है—'सूर्य को नमस्कार करना।' नित्यप्रति प्रातःकाल सूर्योदय के समय सूर्य के क्रमशः 12 नामों का स्मरण अथवा उच्चारण करते हुए शरीर को निर्दिष्ट स्थितियों में लाना 'सूर्य नमस्कार' कहलाता है। वस्तुतः ये सभी स्थितियाँ आसनों का ही रूप हैं। एक मन्त्र का उच्चारण करके सभी स्थितियों को पूर्ण किया जाता है। इसी प्रकार 12 मन्त्रों द्वारा क्रियाएं की जाती हैं।

● दक्ष (एटेन्शन) स्थिति

सीधे खड़े हो जाना चाहिए। पीठ, गला, सिर और समग्र शरीर को सीधा तानकर रखना चाहिये। अगल-बगल की ओर न देखकर दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर स्थिर कर देना चाहिये और शान्त चित्त से मन को वश में रखकर दोनों पैरों के साथ घुटने से घुटना मिलाकर रखना चाहिये तथा हाथ कन्धे से सीधे लटकते रहने चाहिये। मुट्ठियां खुली रहनी चाहिये और छाती को बाहर की ओर उभार कर एक बहादुर की तरह खड़े रहना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रहना चाहिए कि उस समय जहां खड़े हैं, वहीं के वहीं नमस्कार-क्रिया के पूर्ण होने तक पैरों को जमाये रखना अत्यावश्यक है—अर्थात् 10वीं अवस्था में जब पैर को पीछे से आगे लाकर रखें, उस समय इसी स्थान पर रखना आवश्यक है, पैरों को तनिक भी आगे-पीछे रखना नहीं चाहिए। इस प्रकार प्रसन्न चित से परमात्मा का ध्यान करते रहना चाहिये। प्रथम 'क्रिया' (आसन) को 'दक्षासन' कहा जाता है, जिसका अर्थ है सीधे खड़े रहना। इसी प्रकार पहले सेना को भी सावधान (एटेन्शन) का आदेश दिया जाता है। सूर्य-नमस्कार का लाभालाभ

बहुत कुछ श्रद्धा तथा विश्वास-भावना पर आधारित है।

लाभ—हमारे सभी मानसिक विकार नष्ट हो जायेंगे। शरीर को सर्वथा खुला रखकर खड़े होने से उदयोन्मुख सूर्य का प्रकाश शरीर पर पड़ता है, फलतः चर्म रोग दूर रहते हैं तथा शरीर तेजस्वी एवं रक्ताभ बन जाता है। पैरों में नवीन शक्ति का संचार होता है। दृष्टि को नाक के अग्रभाग पर जमाये रखने से मनोनिग्रह भी सरलता से हो जाता है। मुख-मण्डल तेजस्वी होकर नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रफुल्ल हो उठता है। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने का यह सरल उपाय है।

● 1. प्रथम स्थिति (ॐ मित्राय नमः)

इस प्रथम अवस्था में पहुंच जाने पर सीधे खड़े हो जाना चाहिये। दोनों हाथों को जोड़कर प्राणीमात्र को, अन्तरात्मा को तथा भगवान् भास्कर को नमस्कार करना पड़ता है।

लाभ—श्वास के साथ मन को गले में केन्द्रित करने से प्रार्थना में एकाग्रता की शक्ति बढ़ती है और अधिकांश मानसिक तथा शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। गले के सभी रोग पीछा छोड़ देते हैं। स्वर सुन्दर तथा मधुर हो जाता है। शरीर तथा मन निर्मल हो जाता है। शरीर-आत्मा के मन्दिर में नये बल, उत्साह, शौर्य और शुद्ध वीर्य की वृद्धि होकर नवजीवन का संचार होता है। वक्तृत्व-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है।

प्रथम स्थिति

द्वितीय व ग्यारहवीं स्थिति

द्वितीय स्थिति (ॐ रवये नमः)

द्वितीय अवस्था को **'पर्वतासन'** कहकर पुकारा जाता है और प्रथम से द्वितीय अवस्था में आने के लिये नासा-पुटों द्वारा श्वास को अन्दर खींच कर कन्धों तक भर लें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को ऊपर उठाकर समग्र शरीर को तान देना चाहिये और खुली आंखों से आकाश की ओर देखना चाहिए। पीछे की ओर जितना अधिक मुड़ा जा सके, उतना मुड जाना चाहिए। छाती को जहां तक फुलाया जा सके, फुला देना चाहिये और श्वास को बाहर निकाल देना चाहिये।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से हमारे शरीर की संचालिकाओं के बीच अवस्थित दोनों अन्न नलिका तथा श्वासनलिका एवं कन्द को भी पोषण प्राप्त होता है, तद्वत् रोग दूर होते हैं और पोषण भी सम्यक् रूप से प्राप्त होता है। इन सब अंग-प्रत्यंगों को उचित पोषण की उपलब्धि होती रहे और यह सब उचित रूप से क्रिया को निरन्तर करते रहें, तो मानव आजीवन किसी रोग का शिकार नहीं हो सकते। इस क्रिया का अभ्यास करते समय आकाश की ओर देखना पड़ता है, फलतः नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

3. तृतीय स्थिति (ॐ सूर्याय नमः)

इस क्रिया का नाम **'हस्त पादासन'** है। तृतीय अवस्था में श्वास के साथ ऊपर उठे दोनों हाथों को नीचे उतारते हुए और श्वास को बाहर निकालते हुए पैर के अंगूठे के पास हथेलियों को जमा दें, नाक को घुटनों से अड़ा दें। इसके अतिरिक्त पेट को भी अन्दर की ओर खींचना चाहिये और पैरों को सीधा रखना चाहिये।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से छाती बलवान बनती है तथा अनेक उदर रोग मिट जाते हैं। हाथों में शक्ति का संचार होता है तथा बढ़ी हुई तोंद (पेट) से हवा के निकल जाने के कारण पेट छाती के अन्दर चला जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर सुन्दर, सुडौल तथा दर्शनीय बन जाता है। विद्यार्थियों के आरोग्य तथा स्मरण-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है।

(तृतीय स्थिति)

● 4. चतुर्थ स्थिति (ॐ भानवे नमः)

इस क्रिया का नाम 'एकपाद प्रसारणासन' है। इस क्रिया में तृतीय स्थिति में जहाँ हाथ रखे हुए हैं, उन्हें वहीं रहने देना चाहिये। दाहिने पैर को भी यथावत् जमाये रखना चाहिये और बायें पैर को पीछे ले जाकर दाहिने पैर के जानु के भाग से पेट का दाहिना भाग दबाये रखना चाहिये। पहले बाहर निकाल दिये श्वास को बाहर ही रहने देना चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि तृतीय अवस्था में पैरों के पास जमे हुए हाथ 10वीं अवस्था पर पहुंचने तक वहीं यथावत् जमे रहें।
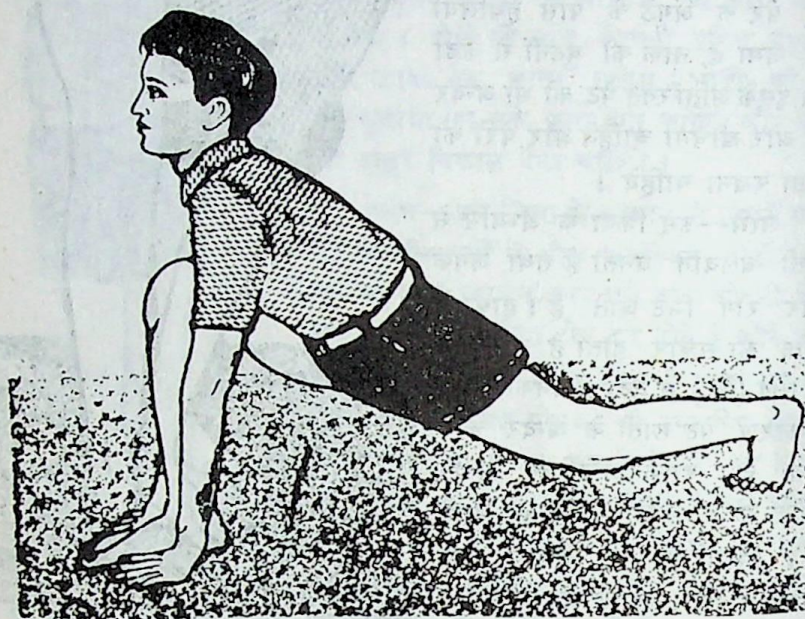
(चतुर्थ स्थिति)

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से लीवर (यकृत) तथा छोटी आंत पर जोर पड़ने से तथा वीर्यवाहिनी नसों में खिचाव होने से लीवर के विभिन्न रोगों तथा कब्ज रोगों से छुटकारा प्राप्त होता है। धातुक्षीणता की व्याधि दूर हो जाती है तथा स्त्री पुरुषों के रज-वीर्य-सबन्धी रोगों का नाश होता है। गले के सभी रोगों का प्रशमन होता है तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह प्रयोग आंखों के लिए भी परम हितकर है।

● 5. पांचवीं स्थिति (ॐ खगाय नमः)

इस अवस्था को 'तुलितवपुरासन' कहा जाता है, दोनों हाथों को चतुर्थ अवस्था के स्थान पर जमाये रखकर, दाएं पैर को पीछे ले जाकर दोनों पैरों के पंजे जमीन से सटे रहते हैं एड़ियाँ उठी रहती हैं। पैरों के घुटने मिले हुए सीधे रहने चाहिए। इस अवस्था में हाथ से कन्धों तक भुजाएं सीधी रहें। सिर उठा हुआ तथा दृष्टि सामने रहनी चाहिए। सारांश यह कि गर्दन से एड़ियों तक सारा शरीर सीधा रहे। श्वास खींचकर अन्दर रोके रखें।

(पाँचवीं स्थिति)

लाभ—भुजाए, हथेलियों तथा पैर की अंगुलियों पर शरीर तौलने से हाथ, पैर व गर्दन का विशेष व्यायाम होता है। इससे तनुओं में दृढ़ता आती है। पेट, घुटने, कुहनी तथा हाथों के जोड़ लाभान्वित होकर अनेक विकार दूर हो जाते हैं।

6. छठी स्थिति (ॐ पूष्णे नमः)

इस अवस्था को **'चतुरंग प्रणिपातासन'** के नाम से पुकारा जाता है। पैर के अंगूठों तथा हाथों के पंजों पर हाथों तथा समग्र शरीर को बिल्कुल सीधा टिकाये रखना चाहिये। दृष्टि को सामने भूमि पर रखना चाहिये और श्वास को अन्दर खींचना चाहिये। इसे 'साष्टांग प्रवाम' भी कहते हैं।
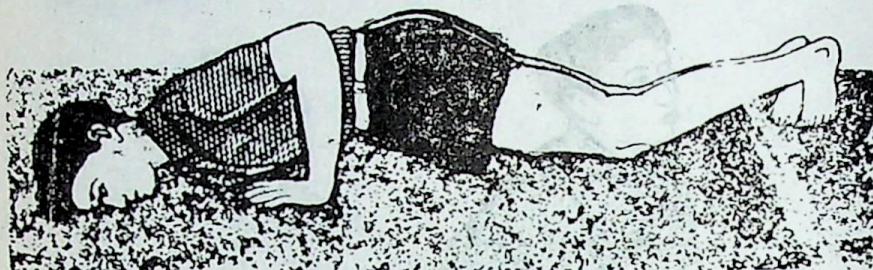
(छठी स्थिति) साष्टांग प्रणाम

लाभ—शरीर के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया से शरीर का उचित विकास होता है और पेट में पहुंचा हुआ अधिक भोजन भी सरलता से पच जाता है। मल-मूत्र की सभी व्याधियां मिट जाती हैं तथा रज-वीर्य और बुद्धि वल का समुचित विकास होता है। इस प्रकार के व्यायाम से हाथ, छाती, कमर तथा मन की शक्ति में वृद्धि होती है और यह सब अंग स्थायी रूप से नीरोगी बन जाते हैं। स्त्री-पुरुष की छाती मजबूत होती है और छाती के रोगों से आजीवन बचाव रहता है। बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं के लिये यह व्यायाम अत्युत्तम है।

7. सातवीं स्थिति (ॐ हिरण्यगर्भाय नमः)

यह **'भुजंगासन'** है। छठी स्थिति के पश्चात् हाथ वहीं के वहीं रहने देने चाहिये। तदनन्तर श्वास को अन्दर भर लेना चाहिये और सिर को सर्प की तरह ऊपर उठाकर पीछे की ओर अधिकाधिक तान देना चाहिये। आंखों को खुली रखना चाहिये और हाथों को सीधा रखकर शरीर को पीछे की ओर धनुषाकार मोड़ देना चाहिये। घुटने जमीन को छूने न पायें, बल्कि उन्हें जमीन से एक इंच ऊँचे रखकर ऊपर की ओर जितना भी अधिक ताना जा सके, तान रखना चाहिये। हाथों को बिलकुल सीधा रखना चाहिये।
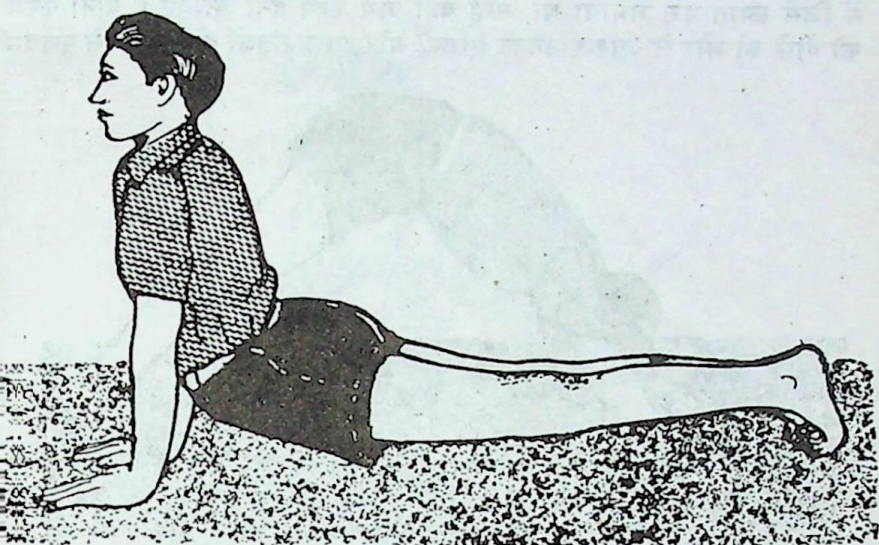
सातवीं स्थिति

लाभ—यह आसन स्वतः ही लाभप्रद होता है, परन्तु इसके साथ जब सूर्य शक्ति की श्रद्धा-भावना मिल जाती है, तब यह और भी अधिक तेजस्वी बन जाता है। इस आसन के अभ्यास से तेजहीन युवक-युवतियों के मुख पर सौंदर्य की दिव्य लालिमा प्रकट होने लगती है। अन्दर बैठी हुई आंखें ऊपर उभर आती हैं और नेत्रों की ज्योति भी अत्यधिक बढ़ जाती है। अन्दर बैठे हुए कपोल ऊपर उठ आते हैं। इस क्रिया से युवकों को तो सौंदर्य मिलता ही है, साथ ही वृद्धों में भी युवकों का बल और तेजस छा जाता है। स्त्री-पुरुषों के रज-वीर्य-विषयक दोषों का उपशम होता है। शीघ्रपतन और नपुंसकत्व आदि व्याधियां भी सदा के लिए पीछा छोड़ देती हैं। युवकों का स्वप्नदोष, युवतियों का प्रदर

अथवा अनियमित मासिकधर्म का दोष दूर हो जाता है। इस आसन का अभ्यास निरंतर करते रहने से कुरूप शरीर भी सौंदर्य से भरपूर हो उठता है और वह नरम, लचीला तथा कोमल बन जाता है। इस आसन से दोनों हाथ-पैर सुदृढ़ और शक्तिवान बनते हैं। जो लोग भुजंगासन का नियमित अभ्यास करते हैं, उनकी जठराग्नि दिनानुदिन तेज होती है, फलस्वरूप उदरगत सभी रोग शान्त हो जाते हैं और सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति भी सजग हो उठती है।

8. आठवीं स्थिति (ॐ मरीचये नमः)

इस अवस्था को **'भूधरासन'** कहा जाता है। दोनों हाथों को तृतीव अवस्था में जिस स्थान पर जमाया था, उन्हें वहीं जमे रहने देना चाहिए। दोनों पैरों को पीछे की ओर ले जाकर उनकी एड़ियों और समग्र तंतुओं को जमीन से पूर्णतः
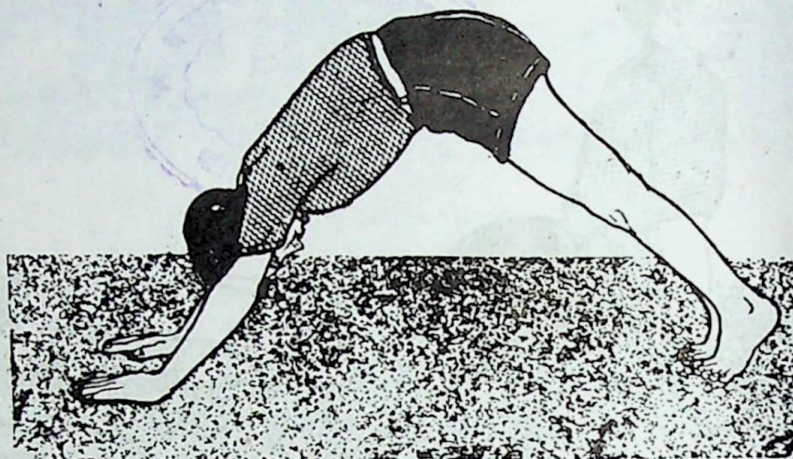
आठवीं स्थिति

लगा देना चाहिये। पैरों के घुटनों को भी मुड़ने देना न चाहिये। इस अवस्था में श्वारा बाहर निकला रहता है, ऐसी दशा में पेट को जितना भी अन्दर की ओर खींचा जा सके, खींचना चाहिए। सिर को अन्दर की ओर ले जाकर आंखों से अपने पेट की ओर एकटक देखते रहना चाहिए।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यस्त हो जाने पर घुटने के रोगों का नाश होता है। हाथ-पैरों के रोग पूर्णतः मिट जाते हैं। मोटी कमर सुन्दर और पतली बन जाती है। पेट के रोगों पर यह क्रिया रामबाण के समान प्रभाव डालती है और उनका उपशम करती है। स्त्रियों का अनियमित मासिकधर्म नियमित बनता है तथा दुर्व्यसनी लोग व्यसन से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। शरीर में

नवीन शक्ति तथा स्फूर्ति का सर्वांगीण संचार हो उठता है। **इस आसन में** श्वास को बाहर निकालकर उड्डीयान बन्ध की तरह पेट को अधिकाधिक अन्दर खींचना पड़ता है। फलतः आंतों में व्याप्त सूक्ष्म सूर्य जाग्रत होता है और पाचन-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है। रोगों से संरक्षण प्राप्त करने की सामर्थ्य बढ़ती है और साधक नीरोग रहकर सुखी जीवन व्यतीत करता है।

● 9. नववीं स्थिति (ॐ आदित्याय नमः)

इस अवस्था को '**एकपाद स्थितासन**' कहा जाता है। इसकी क्रियाविधि चतुर्थ स्थिति के समान ही है, परन्तु इसमें सावधानी यह रखनी चाहिए कि दाहिने पैर को पीछे रखकर बाएं पैर को पीछे से आगे लाना चाहिये।

(नववीं स्थिति)

लाभ—इस क्रिया द्वारा जिस प्रकार मगरमच्छ पानी में चलता है, उसी तरह शरीर तथा पैरों में रक्तसंचालन क्रिया का सूत्रपात हो जाता है। फलतः पैर बलवान् तथा सुदृढ़ बनते हैं और उनकी संचालन शक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है। इस व्यायाम के साथ भगवान भास्कर की भावना का सम्बन्ध हो जाने से दौड़ने-कूदने तथा अन्य खेल कूद करने वाले लोग इससे पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

● 10. दसवीं स्थिति (ॐ सवित्रे नमः)

इस अवस्था को **'हस्त-पादासन'** के नाम से अभिव्यक्त किया जाता है। इसकी अभ्यास-विधि इस प्रकार है—पैरों को पीछे से आगे लाकर उसी स्थान पर दृढ़तापूर्वक स्थापित कर देना चाहिये, जहाँ तीसरी अवस्था में स्थापित किया था। पैर तनिक भी आगे-पीछे न रहने पायें। इस आसन की अवस्था तीसरी अवस्था के समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि शरीर की समग्र शक्ति पैर की उंगलियों में केन्द्रित करनी चाहिये।

लाभ—यह व्यायाम तीसरी विधि के समान ही लाभ प्रदान करता है, साथ ही पैरों की उंगलियों के रोगों को मिटाकर अशक्त मनुष्यों को नवीन शक्ति से भरपूर बनाता है।

(दसवीं स्थिति)

● **ग्यारहवीं** (ॐ अर्काय नमः) **व बारहवीं स्थिति** (ॐ भास्कराय नमः)

11वीं, द्वितीय स्थिति (पृ.130) 12वीं प्रथम स्थिति के समान ही है। इसके पश्चात् साधक सावधान की सिथत में आ जाता है। इस प्रकार एक मंत्र का सूर्य नमस्कार पूरा होता है। तत्पश्चात् सूर्य नमस्कार की प्रथम स्थिति में आकर दूसरा मंत्र बोलकर क्रियाएं की जाती हैं। सारांश यह कि सूर्य-नमस्कार की उक्त अवस्थाओं का साधन अनिवार्य तथा लाभप्रद है।

बारहवीं स्थिति

नोट—सूर्य-नमस्कार तथा अन्य किसी भी व्यायाम से निवृत्त होने के बाद आंखों को बंद कर पाँच मिनट के लिए सीधे चित लेट जाना चाहिये। हाथ-पैरों तथा समग्र शरीर को आरामप्रद स्थिति में रखना जरूरी है। मनुष्य मात्र के लिए योग उतना ही आवश्यक है, जितना जीवन के लिए धूप, पानी, हवा तथा भोजन ।

● जीवन में सच्चा सुख पाने के लिए योगासन पद्धति को अपनाएँ। इससे आप अपने शरीर को नीरोग एवं पूर्ण स्वस्थ रखकर दीर्घ जीवन तक अपना तथा परिवार का पालन व देश की प्रगति में बहुमूल्य योग दे सकेंगे ।

● हजारों वर्ष पूर्व ऋषियों द्वारा बताये हुये योग मार्ग की शरण में आकर मानसिक रोगों (चिन्ता, तनाव, संतुलन) एवं शारीरिक रोगों (कब्ज, मोटापा, गैस, ब्लडप्रैशर, हृदयरोग, दमा, डायबिटीज आदि) से छुटकारा पाकर आप सच्चा सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त कर परिवार एवं समाज की सेवा में सहभागी बनें ।

● आज हम जिस ओर भाग रहे हैं, वह मार्ग सीधा नहीं है—एक भुलावा है। डाक्टरों और अस्पतालों की संख्या तो बढ़ी है, पर मरीजों की घटी नहीं है, क्योंकि यह सब कारण रोग बढ़ाने के हैं, घटाने के नहीं । आसन प्राणायाम हमारी प्राचीन वैज्ञानिक व्यायाम-प्रणाली है, जो हमें अच्छा स्वास्थ्य भी देती है और दीर्घायु भी बनाती है और यह प्राणीमात्र के चलने का सीधा मार्ग भी है। आधुनिक युग में विश्व के अनेक देशवासी योगासनों की ओर आकर्षित हो चुके हैं, खेद है कि अपने घर की ही हम विद्या को भूलते जा रहे हैं ।

● स्वदेशवासियों से सानुरोध निवेदन है कि वे प्रतिदिन सूर्यनमस्कार करने के साथ-साथ यथा-शक्ति योगासन करके दीर्घजीवन प्राप्त करें ।

गायत्री मंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

हे प्राण-पवित्रता और आनन्द के देने वाले प्रभो ! आप सर्वज्ञ और सकल जगत् के उत्पादक हो। हम आपके उस पाप विनाशक ज्ञानस्वरूप तेज का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रकाशित करता है। हे पिता ! हमारी बुद्धियाँ कदापि आपसे विमुख न हों। आप सदैव हमारी बुद्धियों में प्रकाशित रहें और हमें सदा सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते रहें।

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!
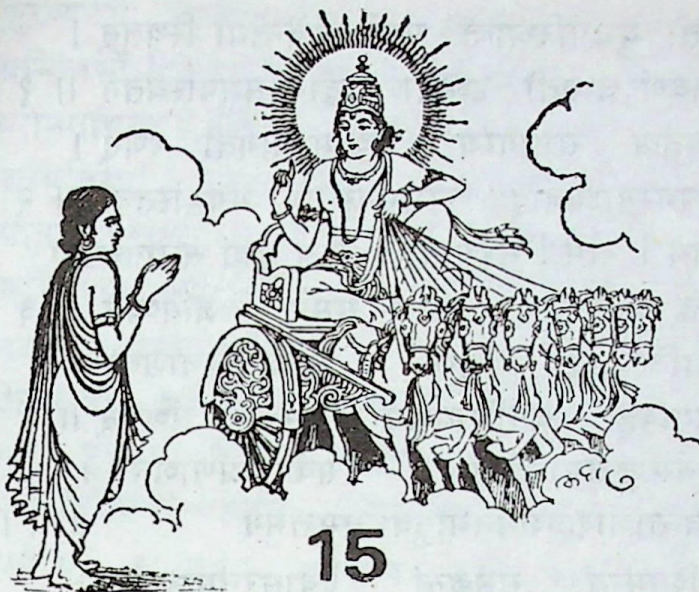
15

आदित्य हृदय स्तोत्रम्

❁ अथ विनियोग मन्त्र ❁

ॐ अस्य श्री आदित्यहृदय स्तोत्रस्यागस्त्य ऋषिस्त्रिशतोऽनुष्टुप् छन्दः एकस्य जगतीच्छन्दः आदित्यो देवता मम भीष्टसंकल्पितासिद्धियर्थे जपे विनियोगः ।

(थोड़ा सा जल हाथ में लेकर उपरोक्त मन्त्र पढ़ें और फिर पृथ्वी पर जल छोड़ दें ।)

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
उपगम्याऽब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ २ ॥
राम ! राम ! महाबाहो ! शृणु गुह्यं सनातनम् ।
येन सर्वानरीन् वत्स ! समरे विजयिष्यसे ॥ ३ ॥
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यक्षयं परमं शिवम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥
रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः ।
एष देवाऽसुरगणाँल्लोकान् पातु गभस्तिभिः ॥ ७ ॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपाम्पतिः ॥ ८ ॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः ।
वायुर्वह्निः प्रजा प्राणा ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
सुवर्णस्तपनो भानुः स्वर्णरेता दिवाकरः ॥ १० ॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान् ॥ ११ ॥

हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥ १२ ॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः ।
धनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः ॥ १३ ॥
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥ १४ ॥
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् ! नमोऽस्तुते ॥ १५ ॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाऽद्रये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥ १६ ॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥ १७ ॥
नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥ १९ ॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायाऽमितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥ २१ ॥
नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥ २२ ॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
एष चैवाऽग्निहोत्रं च फलं चैवाऽग्निहोत्रणाम् ॥ २३ ॥
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥ २४ ॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥ २५ ॥
पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥ २६ ॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो! रावणं त्वं जयिष्यसि ।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम् ॥ २७ ॥
एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥ २८ ॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेद परं हर्षमवाप्तवान् ।
चिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ २९ ॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धार्थं समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥ ३० ॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहिष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥ ३१ ॥

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽगस्त्योक्तमादित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।
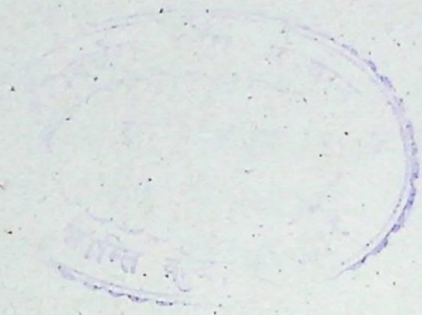
DEHATI'S PUBLICATIONS

सुन्दर व आकर्षक कैसे बनें 20/-

बुनाई के 50 नमूने 20/-

आपकी हैल्थ 20/-

जूडो, कराटे, बॉक्सिंग 20/-

नये प्रकाशन !

सिम्पल मेडीकल व्यायाम 20/-

5005 चिल्ड्रन नेम्स 10/

अपना कद कैसे बढ़ायें 20/-

1. स्पीडली इंगलिश स्पीकिंग कोर्स (हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, बंगाली, उड़िया, आसामिज, मलयालम, मराठी, तामिल, तलगु, कन्नड, सिन्धी, कश्मीरी, नेपाली, अरेबिक पर्सियन) प्रत्येक 50/-
2. स्पीडली सेल्फ लेटर ड्राफ्टिंग कोर्स (इंगलिश व अन्य 17 भाषाओं में तैयार) प्रत्येक 50/-
3. किचन गार्डनिंग 20/-
4. स्पीडली होम एण्ड कॉमर्शियल टेलरिंग कोर्स 48/-
5. लेटेस्ट स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज 90/-
6. कम्पलीट उषा बुनाई विज्ञान 48/-
7. वृहद् हस्त-रेखा विज्ञान 40/-
8. न्यू गेट ग्रिल रेलिंग कैटलॉग 280/-
9. वेजी. तथा नॉन-वेजी. किचिन किंग 72/-
10. देश-विदेश की 25 भाषाएं 20/-
11. डायबिटीज एण्ड ब्लड प्रैशर ट्रीट. 40/-
12. स्टील फर्नीचर डिजाइन बुक 160/-
13. मैस्मेरिज्म, हिप्नो, शक्ति-चक्र 24/-
14. स्पीडली चिल्ड्रन एनसाइक्लोपिडीया ऑफ नालिज 40/-
15. ऑटोमोबाइल इंजीनियरिंग 60/-
16. मोटर ड्राइविंग टीचर 30/-
17. इलैक्ट्रिक वायरिंग 30/-
18. आधुनिक एलोपैथिक गाइड 90/-
19. डॉमेस्टीकेशन ऑफ डागस् 40/-
20. इलाजुल गुर्बा 40/-
21. देहाती प्राकृतिक चिकित्सा 40/-
22. नवीन अपटुडेट जादूगरी (दो भाग) 72/-
23. देहाती जड़ी बूटियां 40/-
24. सात दिन हारमोनियम वादन कोर्स 22/-

DEHATI PUSTAK BHANDAR, DELHI

Branch :- G-1 Jaina Shaktideep 2-Netaji Subash Marg NEW DELHI-2